1. जनजातीय स्वास्थ्यः स्थिति, चुनौतियाँ और संभावनाएँ

* डॉ. मितेश जुनेजा

सारांश -

स्वास्थ्य जीवन का एक आवश्यक आयाम है, इसके अभाव में मानव जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती है और इसीलिए स्वास्थ्य पर चर्चा एक चुनौतीपूर्ण विषय है । हालांकि स्वास्थ्य सभी समुदायों और क्षेत्रों के जीवन का प्रमुख आधार है और जनजातीय समुदाय के लिए इसकी महत्ता कई अधिक है । इसके दो प्रमुख कारण प्रतीत होते है प्रथक्करण और अंधविश्वास । विविध सरकारी और गैर सरकारी प्रयासों के बावजूद जनजातीय स्वास्थ्य की गुणवत्ता आज भी कई चुनौतियों से युक्त है । विविध अध्ययन और जनजातीय स्वास्थ्य से जुड़े दस्तावेज उनकी स्वास्थ्य की दशा और दिशा को प्रस्तुत करते हैं । इसके कई उदाहरण जनसंचार के साधनों के माध्यम से भी प्रस्तुत किए जाते हैं । आवश्यकता है कि जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य की परिस्थितियों को व्यापक रूप में विश्लेषित कर उनके स्थायी समाधान खोजे जाए और विविध सुविधाओं की उपलब्धता के साथ उनके उपयोग और महत्व को भी बताया जाए तभी वास्तविकता में जनजाति क्षेत्रों की स्वास्थ्य की स्थिति में परिवर्तन का एक मार्ग तैयार किया जा सकता है ।

प्रस्तावना :

वर्तमान संदर्भ में मानव जीवन से जुड़ी प्रमुख आवश्यकताओं में भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा और स्वास्थ्य को सम्मिलित किया जा सकता है । हम यदि ऐसा कहे कि इनमें से किसी एक भी उपलब्धता की कमी से मानवीय जीवन प्रमुखता से प्रभावित होता है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी । स्वास्थ्य का आयाम केवल शारीरिक सन्दर्भ तक ही सीमित नहीं है बल्कि मानसिक, सामाजिक, व्यावसायिक, आर्थिक, आध्यात्मिक आदि से संबंधित है । स्वास्थ्य प्राचीनकाल से ही चर्चा का विषय रहा है, कहीं जड़ी-बूटी तो कहीं तंत्र-मंत्र, कहीं प्राकृतिक पद्धति तो कहीं आधुनिक चिकित्सा विज्ञान, इस प्रकार स्वास्थ्य का विषय निश्चय ही संवेदनशील है और इसीलिए स्वास्थ्य से आयाम को एक अधिकार के रूप में रेखांकित किया जाता है जिसके अनुरूप स्वास्थ्य से जुड़ी विभिन्न नीतियाँ, योजनाएँ और कार्यक्रमों को राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर प्राथमिकताओं में रखकर निर्मित

* व्याख्याता, समाजशास्त्र, श्री रतनलाल कंवरलाल गर्ल्स कॉलेज, किशनगढ़, राजस्थान
smiteshjuneja@gmail.com

की जाती है । वर्तमान समय में भी केन्द्रीय और राज्य स्तर पर स्वास्थ्य हेतु विभिन्न परिवर्तित आयाम विद्यमान है । जनजातीय समुदाय की पहचान का सांस्कृतिक आधार अत्याधिक सशक्त है और प्रथक्करण में उनके निवास से उनके सांस्कृतिक पहलू को जानने और समझने का लगातार प्रयास किया जाता रहा है । बदलाव के परिणामस्वरूप जनजातियाँ भी आधुनिकता के करीब आ रही है लेकिन भी जनजातीय दशा और दिशा में कोी व्यापक परिवर्तन का विश्लेषण करना आवश्यक प्रतीत होता है । संवैधानिक आधार पर अनुसूचित जनजाति का दर्जा उनके विकास के मार्ग को खोलता है लेकिन उनकी स्थिति से जुड़े कुछ प्रश्न उनके विकास को गहराई से सोचने और समझने के लिए विवश भी करते हैं, इन्ही में से एक महत्वपूर्ण और संवेदनशील विषय अथवा मुद्दा उनके स्वास्थ्य से जुड़ा है । एक ओर हम कह सकते हैं कि स्वास्थ्य का विषय स्थानिक न होकर वैश्विक है तो दूसरी ओर यह भी कहा जा सकता है कि जनजाति समुदाय और स्वास्थ्य की दशा और दिशा जैसे विषयों का स्थानिक आधार अभी भी इनकी प्रथकता को दृष्टिगोचर करता है । यह ठीक है परम्परागत चिकित्सा की उनकी अपनी विरासत है लेकिन अंधविश्वास के कारण अस्वास्थ्यकर दशाएँ उन्हें स्वास्थ्य की उत्तम दशा के वातावरण का सहभागी नहीं बनने देती है और ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य के अधिकार और योजनाओं का जनजातीय क्षेत्रों में प्रभाव और अप्रभाव के बारे में सोचने और अनुसंधान आवश्यक हो जाता है ।

जनगणना वर्ष 2011 के अनुसार भारत में जनजातीय जनसंख्या कुल जनसंख्या की 8.6 प्रतिशत है । राजस्थान की जनजाति जनसंख्या 9,238,534 है जिसमें ग्रामीण जनसंख्या 8,693,123 और शहरी जनसंख्या 545,411 है । दशकीय वृद्धि दर को देखा जाए तो कुल जनसंख्या में 30.2 जबकि ग्रामीण और शहरी क्षेत्र में क्रमशः 29.4 और 43.6 प्रतिशत वृद्धि दर्ज की गयी है । इस आधार पर स्पष्ट होता है कि राजस्थान में कुल जनसंख्या का 13.5 प्रतिशत जनजातीय जनसंख्या निवास करती है ।

जनजाति स्वास्थ्यः मुद्दे और चुनौती के रूप में

यहाँ हम जनजाति स्वास्थ्य से जुड़ी विभिन्न विविध अध्ययन के परिणामों के आधार पर मौजूद सबन्धित कारण और चुनौतियों को समझने का प्रयास करते हैं । भोजन एवं पोषण से जुड़ी समस्या आज भी जनजातीय क्षेत्रों में दिखायी देती है । इसका एक कारण जनजाति समुदाय में स्वास्थ्य संबंधी जागरूकता का अभाव भी है । स्वास्थ्य से जुड़ी अंधविश्वास की प्रवृत्तियों को वे आज भी अपने जीवन का अंग मानते हैं । इसके अनेक कारणों में जनजाति क्षेत्रों में चिकित्सा सेवा और सुविधाओं की कमी भी है । निर्धनता के

कारण न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति में भी समस्या होने से स्वास्थ्य पर इसका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । उनकी कार्य की दशाएँ और स्वास्थ्य ह्रास भी आपस में अन्तर्सम्बन्धित है । इनमें बसावट, आवास और पर्यावरण और स्वास्थ्य से जुड़ी समस्याएँ भी विद्यमान है । उनकी सम्पूर्ण दिनचर्या के भी स्वास्थ्य पर नकारात्मक प्रभाव दिखायी देते हैं और इसी के साथ मद्यपान की आदत भी उनकी स्वास्थ्य की दशा को उत्तम नहीं बनाए रखने देती है ।

विभिन्न अध्ययन यह बताते हैं कि जनजातियाँ प्रथक्करण में निवास करती है जहाँ कई क्षेत्रों में तो आधुनिक चिकित्सा पद्धति और उपचार विधि की उपलब्धता ही नहीं है लेकिन दूसरी ओर यह तथ्य भी रोचक है जहाँ दोनों विधियों के मध्य चयन की स्थिति आती है वहाँ भी सामान्यतया परम्परागत चिकित्सा और उपचार विधि को प्राथमिकता दी जाती है । रोग की गंभीरता होने पर ऐलोपेथी का सहारा लिया जाता है । शिक्षा का भी स्वास्थ्य से गहरा संबंध है, कई जनजातीय इलाकों में अशिक्षा के कारण स्वास्थ्य और पोषणीय चेतना का स्तर बहुत निम्न है । प्रजननदर और मृत्युदर की अधिकता भी जनजातीय क्षेत्रों में व्याप्त है । साथ ही अपौष्टिकता और संक्रमण स्वास्थ्य ह्रास के प्रमुख कारणों में हैं ।

राष्ट्रीय आदिवासी नीति के ड्राफ्ट में भी स्पष्ट किया गया है कि मानव विकास सुचकांक में भी जनजातियों की स्थिति अन्य जनसंख्या के संदर्भ में उपयुक्त नहीं है विशेषतः शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, आय के आदि क्षेत्र में । नीति के दस्तावेज में स्पष्ट किया गया है कि प्रथक्करण से जुड़े आदिवासी क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल एक महत्वपूर्ण समस्या है, खाद्य सुरक्षा की कमी, स्वच्छता, पीने के पानी, कमजोर पोषण तथा उच्च गरीबी स्तर जनजातियों में अस्वस्थता के प्रमुख कारण है । जनजातियों की स्वयं का स्वास्थ्य देखभाल परम्परागत चिकित्सा व्यवस्था पर आधारित है लेकिन कई ऐसे रोग है जिनमें आधुनिक चिकित्सा पद्धति बचाव कर सकती है जबकि परम्परागत व्यवस्था नही ।

जनजातियों में शिशु मृत्यु दर, पांच से कम उम्र के बच्चों की मृत्यु दर तथा पोषण की कमी आदि में सभी की तुलना में जनजातियों की स्थिति उपयुक्त नहीं है अथवा सभी क्षेत्रों में जनजातियों का प्रतिशत अधिक है जिसे निम्नलिखित सारणी के माध्यम से समझ सकते हैं -

प्रमुख स्वास्थ्य संकेतक

संकेतक अनुसूचित जनजाति	कुल	
शिशु मृत्यु दर	62.1	57
नवजात मृत्यु दर	39.9	39
प्रसवोत्तर मृत्यु दर	22.3	18
बाल मृत्यु दर	35.8	18.4
पांच वर्ष से कम मृत्यु दर	195.7	74.3
एएनसी जाँच	70.5	77.1
संस्थागत प्रसव प्रतिशत	17.7	38.7
बच्चों की टीकाकरण	31.1	43.5
मृत्यु दर स्वास्थ्य योजनाएँ और बीमा से संबंधित घर	2.6	31.9
महिलाओं में कोई भी एनिमिया का प्रचलन (<12.0g/dl)	68.5	55.3

स्त्रोत :राष्ट्रीय परिवार और स्वास्थ्य सर्वेक्षण (NFHS). 2005-06

भारत सरकार का आदिवासी मामलात विभाग की मई 2014 की उच्च स्तरीय कमेटी की रिपोर्ट में जनजातियों की स्वास्थ्य की स्थिति को रेखांकित गिया गया है जिसमें विभिन्न द्वैतीयक तथ्यों को सम्मिलित करते हुए दर्शाया गया है और इसी आधार पर जनजातियों में कुछ महत्वपूर्ण रोगों का रेखांकित किया गया है जिनमें कुपोषण, मातृत्व एवं बच्चों में स्वास्थ्य की समस्याएं, संक्रामक रोग, दुर्घटना और चोट, एल्कोहल और तम्बाकू का अत्याधिक उपभोग, वंशानुगत रोग, मस्तिष्क रोग, विशिष्ट समस्याएँ और असंक्रामक रोगों को दर्शाया गया है । रिपोर्ट में जनगणना 2001 और राष्ट्रीय परिवार और स्वास्थ्य सर्वेक्षण 2005-06 को आधार मानकर अनुमानित आधार पर जन्मदर और मृत्युदर को बताया गया है । भारत के संदर्भ में शिशु मृत्युदर, पांच वर्ष से कम बालक की मृत्युदर और जीवन प्रत्याशा के आंकड़ों में क्रमशः 88.129 प्रति हजार और 66.9 दर्शाया गया वहीं राजस्थान के संदर्भ में क्रमशः 104,158 प्रति हजार और 57.2 दर्शाया

गया है । अन्य सभी के संदर्भ में भी शिशु मृत्युदर और पांच वर्ष से कम आयु की मृत्युदर में राजस्थान की जनजातीय स्थिति उनकी स्वास्थ्य की दशा और दिशा को प्रदर्शित करती है । जनजाति और गैर-जनजाति में तम्बाकु के उपयोग को दर्शाया गया है जिसमें भारत के संदर्भ में जनजातियों में 71.7 प्रतिशत और गैर जनजातियों में 65.3 प्रतिशत जबकि राजस्थान में 75.2 प्रतिशत एवं 59.4 प्रतिशत बताया गया है । इसी प्रकार से एल्कोहल के उपयोग में भारत में जनजातियों में 50.5 प्रतिशत और गैर जनजातियों में 30.4प्रतिशत जबकि राजस्थान में क्रमशः 30.6 और 17.7 प्रतिशत दर्शाया गया है । इसके अतिरिक्त कई अन्य मुद्दे भी उठाए गये है जिससे जनजातीय क्षेत्रों की स्वास्थ्य की वास्तविक स्थिति को देखा जा सकता है । उपर्युक्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य के सुधार की अत्यंत आवश्यकता है ।

राजस्थान के जनजाति उपयोजना क्षेत्र में किए गए अध्ययन में जनजातीय स्वास्थ्य की स्थिति को निम्नालिखित बिन्दुओं के माध्यम से समझ सकते हैं -

- शारीरिक स्वास्थ्य और स्वच्छता का आयाम जनजातीय में स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता की कमी को स्पष्ट रेखांकित करता है । बाल और नाखून की सफाई में जनजातियों में अनियमितता है जिसके कारणों में अज्ञानता, अंधविश्वास और समयाभाव को प्रमुख है । दाँतों की सफाई हो या स्नान, स्वास्थ्य से जुड़े बाह्य पक्ष जनजाति स्वास्थ्य के प्रति जागरुकता की कमी को प्रदर्शित करते हैं ।

- भोजन में प्रयुक्त आवश्यक तत्वों और खाद्य सामग्री के प्रति जागरुकता की कमी भी जनजातियों में अस्वस्थता का एक प्रमुख कारण है । इनमें प्रोटीन, विटामिन, कार्बोहाइड्रेटस, आयोडीन, कैलोरी आयरन और केल्शियम के बारे में उनकी जागरूकता की कमी विद्यमान है । वे इनमें से कुछ आवश्यक तत्वों का प्रयोग तो करते है लेकिन उसकी निर्धारित मात्रा के प्रति अनभिज्ञता है ।

- खुले में शौच भी जनजाति क्षेत्रों में स्वास्थ्य के प्रति एक प्रमुख चुनौती है । पुरुषों और स्त्रियों द्वारा खुले में क्रमशः आवास से दूर और निकट शौच किया जाता है जोकि उनके स्वास्थ्य को प्रभावित करता है ।

- मद्यपान जनजाति क्षेत्रों में स्वास्थ्य अवनति का कारण मान जाता है । जनजाति क्षेत्रों में यह जानकारी तो विद्यमान है कि मद्यपान और स्वास्थ्य आपस में संबंधित है लेकिन फिर भी इसे गंभीरता से नहीं लिया जाता है, इसके कारणों में थकान, मनोरंजन, पारिवारिक कलह, आदत आदि प्रमुख है ।

- आवास की स्वच्छता और गन्दे पानी, अन्य पदार्थों का निष्कासन भी जनजातीय स्वास्थ्य का एक महत्वपूर्ण पक्ष है । आवास के निकट खुले में गंदगी से रोगों का आमंत्रण निश्चित हो जाता है जोकि जनजातीय क्षेत्रों में विद्यमान है ।

- जनजाति क्षेत्रों में स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए अंधविश्वासों में विश्वास करना आज भी विद्यमान है और इसीलिए स्वास्थ्य में अवनति को जादू टोना, तंत्र-मंत्र आदि से दूर करने का प्रयास किया जाता है । इसमें क्षेत्र के भोपा अथवा बावजी की भूमिका महत्वपूर्ण होती है इसी कारण उपचार में उनको प्रथम जबकि आधुनिक चिकित्सा पद्धति को द्वितीय पायदान पर रखा जाता है ।

- नियमित स्वास्थ्य जाँच भी जनजातीय क्षेत्रों में एक चुनौती के रूप में है । एक ओर जनजाति समुदाय इसके प्रति सजगता नहीं रखता है जबकि कई जनजाति क्षेत्रों में स्वास्थ्यकर्मी जाना भी नही चाहते है जोकि एक संवेदनशील विषय है । साथ ही नियमित टीकाकरण में भी वे पिछड़ी स्थिति में है ।

- जनजातियों में चिकित्सा से जुड़े सामान्य अधिकारों की जागरूकता का अभाव भी विद्यमान है अर्थात स्वास्थ्य से सामान्य अधिकार जैसे चिकित्सक द्वारा धोखाखड़ी या अंग चोरी गैरकानूनी, इलाज के समय चिकित्सक का लापरवाही नहीं करना और डयूटी की अनिवार्यता, रिश्वत हेतु सजा का प्रावधान, चिकित्सक द्वारा क्षेत्र में जाकर रोग व रोगियों की समय-समय पर जाँच करना, मरीज को इलाज से पूर्व छुट्टी नहीं देना, रोगी को रोग की जानकारी देना, चिकित्सालयों में भेदभाव नहीं आदि के प्रति जागरुकता की कमी भी जनजातीय स्वास्थ्य के संदर्भ में एक गंभीर मुद्दा है ।

- स्वास्थ्य से जुड़ी नागरिक अधिकार जैसे बहिरंग सेवाएँ, विशेषज्ञ सेवाएँ, परिवार कल्याण, रोगी वाहन की सेवाएँ, सामाजिक सुरक्षा योजना संबंधित सेवाएँ आदि के प्रति जनजाति क्षेत्रों में जागरूकता की है ।

- जनजाति क्षेत्रों में केन्द्र और राज्य सरकार द्वारा संचालित विभिन्न कार्यक्रमों के प्रति भी जागरुकता की कमी है ।

जनजाति समुदाय और स्वास्थ्य : विविध कदम -

वैश्विक परिदृश्य के अधिकारों में स्वास्थ्य को भी सम्मिलित किया जाता है । मानवाधिकारों की घोषणा इसका एक उपयुक्त उदाहरण है जिसमें दिए गए अनुच्छेद २५ में स्वास्थ्य के अधिकार को अंगीकार किया गया है । साथ ही नागरिक तथा राजनैतिक

अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसविदा के अनुच्छेद ६, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अधिकारों की अन्तरराष्ट्रीय प्रसंविदा के अनुच्छेद १२ तथा अल्माआटा घोषणा में स्वास्थ्य के अधिकार को अंगीकार किया गया है ।

भारतीय संविधान समता, समानता, समरसता का प्रतीक है । सभी को विकास के समान अवसरों के साथ-साथ विभिन्न चुनौतियों और समस्याओं के समाधान भी समानता को प्रतिबिंबित करता है । जनजाति समुदाय के संदर्भ में भी इसे समझा जा सकता है । संविधान से जुड़े अनुच्छेद में 21,23,24, 32,38,39,40,41,47, 48 ए, 246 छ आदि प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर स्वास्थ्य को रेखांकित करते हैं । इसके अतिरिक्त जनस्वास्थ्य से जुड़े अधिकार भी स्वास्थ्य देखभाल को सकारात्मक प्रदान करते हैं ।

स्वास्थ्य संबंधित विविध प्रयास को भी यहाँ देखे जाने की आवश्यकता है विशेषतः राष्ट्रीय ग्रामीण स्वास्थ्य मिशन इसमें अहम भूमिका अदा करता है जिसका उद्देश्य स्वास्थ्य सेवा गुणवत्ता में सुधार लाना रहा है । राजस्थान के विशेष संदर्भ में राजस्थान हेल्थ सिस्टम डेवलपमेंट प्रोजेक्ट के द्वारा जनजातीय विकास योजना की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है । इसी प्रकार परिवर्तन के इस दौर में राजस्थान के लिए कई नवीन और प्रभावी कदम उठाए गए जिनमें विशेषतः निःशुल्क दवा और जाँच योजनाएँ प्रमुख हैं। साथ ही स्वास्थ्य के संदर्भ में स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित करने हेतु पहाड़ी, जनजातीय तथा कठिनाई वाले क्षेत्रों के लिए केन्द्र सरकार द्वारा विशेष प्रावधान है जिसका विवरण निम्नानुसार है -

केन्द्र	सामान्य इलाकें	पहाड़ी / जनजातीय कठिनाई क्षेत्र
उपकेन्द्र	5,000	3,000
प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र	30,000	20,000
सामुदायिक स्वास्थ्य केन्द्र	1,20,000	80,000

जनजाति क्षेत्रीय विकास विभाग के वार्षिक प्रतिवेदन में राजस्थान में स्वास्थ्य से जुड़े कार्यक्रमों को बताया गया है इसमें स्वच्छ परियोजनाअन्तर्गत क्षय रोग निमंत्रण कार्यक्रम के संदर्भ में कहा गया है कि सामान्यतः जनजाति आबिदी दूरदराज के क्षेत्र मेमृं निवास करती है तथा स्वास्थ्य सुविधाएँ आसपास उपलब्ध नहीं होती है । जनजाति व्यक्तियों में क्षय रोग का प्रकोप अधिक रहता है तथा निदान हेतु नियमित उपचार अनिवार्य होता है किन्तु जनजाति व्यक्ति के लिए कार्य दशाओं एवं स्वास्थ्य सुविधाओं की दूरी के कारण नियमित उपचार लिया जाना संभव नहीं हो पाता है । अतः इस समस्या

के निदान हेतु स्वच्छ परियोजना के माध्यम से क्षयरोग नियंत्रण कार्यक्रम संचालित किया जा रहा जिसमें स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं द्वारा क्षय रोगियों की पहचान कर उन्हें नियमित उपचार उपलब्ध कराया जाता है तथा पौष्टिक सत्तु दिया जाता है । साथ ही साथ जनजाति स्वास्थ्य के विकास हेतु पोषक तत्व वितरण कार्यक्रम चलाया जा रहा है जिसमें जनजाति विद्यार्थियों में पोषक तत्वों की कमी की पूर्ति के लिए चिकित्सा विभाग के माध्यम से सूक्ष्म पोषक तत्वों का वितरण कार्यक्रम चलाया जा रहा है । सहरिया क्षेत्रों में सहयोगी (महिला) भी कार्यरत है जिसको प्राथमिक स्वास्थ्य किट उपलब्ध करवाया जाता है जोकि सहरिया जनजाति इलाकों हेतु प्रभावी प्रयास है ।

बाहरवीं पंचवर्षीय योजना भी जनजातीय स्वास्थ्य के संवर्द्धन में महत्वपूर्ण आयामों को संजाने का प्रयास करती है । योजनान्तर्गत जनजाति स्वास्थ्य के पक्षों को निम्नलिखित बिन्दुओं में दर्शाया गया है -

- जनजातीय कार्य मंत्रालय इस स्कीम के अंतर्गत जनजातीय क्षेत्रों में 10 या उससे अधिक बिस्तरों वाले अस्पताल चलाने या चलते-फिरते औषधालयों के लिए अनुसूचित जनजाति का कल्याण करने के लिए कार्य कर रहे स्वयंसेवी संगठनों को वित्तीय सहायता देता है । दूरदराज के जनजाति क्षेत्रों में प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र स्थापित करने के लिए सार्वजनिक निजी भागीदारी करने के लिए भारी पैमाने पर स्वास्थ्य परियोजनाएं / कार्यक्रम चलाने की जरूरत है ।

- जनजातीय लोग अपनी दिन प्रतिदिन की छोटी मोटी बीमारियों और बड़ी बीमारियों का इलाज अपने परम्परागत तरीकों से करते हैं । स्वदेशी जनजातीय चिकित्सा को अन्य चिकित्सा प्रणालियों के साथ जोड़ने के लिए एक नई कार्यनीति विकसित करने की जरूरत है । जनजातीय लोगों के चिकित्सा संबंधी / औषधीय पौधों से संबंधित इस परम्परागत ज्ञान को पुस्तकबद्ध कराने, इसका मानकीकरण करने और इसे उपचार की एक स्वतंत्र प्रणाली के रूप में मान्यता दिलाने के लिए व्यवस्थित प्रयास करने की जरूरत है । स्थानीय जनजातियों खासकर परम्परागत रूप से इलाज करने वालों को प्रशिक्षित करने और परिश्रमिक लेकर लोगों का इलाज करने का उत्तरदायित्व उन्हें सौंपा जा सकता है ।

- कुपोषण की समस्या का सामना करने के लिए जनजातीय परिवारों को स्थानीय अनाज, दालें और खाद्य तेल पर्याप्त मात्रा में दिया जाना चाहिए । इस संदर्भ में सार्वजनिक वितरण प्रणाली में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए जिससे यह

पीवीटीजी पर विशेष ध्यान देते हुए जनजातीय समूहों की खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित की जा सके । पीडीएस और आंगनबाड़ी केन्द्रों के प्रबंधन का कार्य स्थानीय जनजातीय वर्गों, खासकर महिलाओं द्वारा किया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित किया जाए कि बच्चों को स्थानीय रूप से खाया जाने वाला भोजन ही दिया जाता है । अत्याधिक कमजोर पीवीटीजी को कृषि एवं आय सृजन के अन्य कार्यों में लगाकर पूर्ण खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित करनी चाहिए ।

- जनजातीय क्षेत्रों में स्वच्छ पेय जल की कमी या अनुपलब्धता की समस्या है । बारहवीं पंचवर्षीय योजना अवधि की समाप्ति तक जनजातीय क्षेत्रों के सभी निवासियों को स्वच्छ पेय जल के स्त्रोत और स्वच्छता सुविधाएँ प्रदान करा दी जानी चाहिए । स्वच्छता सुविधाएँ प्रदान करने के लिए भी प्रयास किये जाने चाहिए जिससे कि गंदे माहौल में रहने से उत्पन्न होने वाली बीमारियों से बचा जा सके । इस उद्देश्य के लिए पंचायत के सदस्यों और समुदाय को महामारी के समय देखभाल करने, गांव में स्वच्छता और सफाई बनाए रखने तथा पानी को पीने योग्य बनाने के लिए इसकी सफाई करने का प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए ।

- जनजातीय क्षेत्रों में एक निश्चित अंतराल पर टीकाकरण अभियान चलाया जाना चाहिए और इसका व्यापक प्रचार प्रसार किया जाए तथा सार्वजनिक उपचार प्रणाली एवं चलते-फिरते स्वास्थ्य केन्द्रों में इसकी व्यवस्था की जाए । स्वास्थ्य संबंधी व्यवहारों, लिंग-पूर्वाग्रह और गलत रीतिरिवाजों जैसे धूम्रपान करने, नशे की लत, शराब पीने, कुपोषण, असुरक्षित शारीरिक संबंध बनाने और कम उम्र में बच्चे को जन्म देने के संबंध में नियमित आईईसी कार्यक्रम चलाये जाने चाहिए ।

स्वास्थ्य केन्द्रीय स्तर पर जनजाति मामलात मंत्रालय की भी प्रमुख प्राथमिकताओं में से एक है । जनजाति मामलात मंत्रालय, भारत सरकार भी जनजाति स्वास्थ्य के संवर्द्धन हेतु यह विचार रखता है कि जनजातियों हेतु भी शिक्षा की भांति स्वास्थ्य जागरुकता हेतु भी एक विशेष अभियान चलाए जाने की आवश्यकता है जिसमें स्वास्थ्य से संबंधित विभिन्न अधिकारियों और कार्यकर्ताओं और अभिकरणों को सम्मिलित किया जाए और विशेषतः गर्भवती महिलाओं हेतु शत-प्रतिशत टीकाकरण एवं प्रथम तीन माह में रजिस्ट्रेशन पर ध्यान दिए जाने पर केन्द्र एक प्रमुख विषय के रूप में उल्लेखित किया गया है ।

वर्तमान संदर्भ में खुले में शौच और स्वच्छता एक महत्वपूर्ण विषय के रूप में दिखायी देता है । केन्द्र सरकार द्वारा इस हेतु विशेष कार्यक्रम संचालित किये जा रहे हैं और साथ ही राज्य स्तर पर भी जन-जागरूकता के प्रयास किये जा रहे हैं । जनजातीय

क्षेत्रों में भी इसकी आवश्यकता स्पष्ट दिखायी देती है क्योंकि खुले में शौच के अस्वास्थकर परिणाम भी विद्यमान है ।

जनजाति स्वास्थ्यः प्रयास और वास्तविकता के संदर्भ में

उपर्युक्त विवेचना में जनजातीय स्वास्थ्य हेतु विभिन्न संस्थाओं के प्रयासों और कार्यक्रमों को दर्शाया गया है साथ ही साथ जनजातियों की वास्तविक स्वास्थ्य स्थिति को भी उल्लेखित किया गया है । यहाँ आवश्यकता है दोनों स्थितियों के मध्य अन्तर को समझने की । केन्द्र और राज्य स्तर के प्रयास निश्चित ही स्वास्थ्य की उत्तम दशा के निर्माण हेतु प्रभावी है । जनजातीय क्षेत्रों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण चुनौती जागरुकता से जुडी है । परिवर्तन के इस दौर में भी जब कभी जनसंचार के माध्यमों से जनजातीय क्षेत्रों में स्वास्थ्य की प्रतिकूल स्थिति को जाना जाता है तो इन क्षेत्रों में स्वास्थ्य जागरूकता पर प्रश्नचिह्न लगता है । संभवतः प्रयास और वास्तविक स्थिति की मध्यस्थता जागरूकता कार्यक्रम कर सकते है । जनजाति स्वास्थ्य की वास्तविक स्थिति को विभिन्न दस्तावेज भी स्पष्ट कर रहे हैं जिन्हें भी पूर्व में उल्लेखित किया गया है । इस प्रकार स्वास्थ्य के अधिकार की जागरूकता और आवश्यक संसाधनों की उपलब्धता के माध्यम से जनजातीय क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य की दशा को उत्तम बनाने का सफल प्रयास किया जा सकता है । अतः जनजाति स्वास्थ्य की दशा और दिशा को व्यापक परिदृश्य में देखने और समझने की आवश्यकता प्रतीत होती है ।

जनजाति स्वास्थ्य के सुधार से जुड़े पक्ष :-

- विद्यालय में केन्द्र एवं राज्य सरकार द्वारा लागू किए गए विभिन्न स्वास्थ्य से जुड़े कार्यक्रमों की जागरूकता को स्थापित करने का प्रयास करना चाहिए । आवश्यकता इसी बात की है कि विद्यालय के प्रभावी प्रयास और कार्यक्रम जनजातीय क्षेत्रों में भी स्वास्थ्य का एक सकारात्मक वातावरण निर्मित करने में अपना सकारात्मक योगदान दे । इसमें विद्यालय के शिक्षकों को भी सहभागी होना आवश्यक है । इसी तरह स्वास्थ्य का पक्ष भी सशक्त बनाने में भी शिक्षकों की सहभागिता बढ़ाए जाने की आवश्यकता है ।

- जनजाति क्षेत्र में निर्धारित स्वास्थ्य सेवाएँ भी उपलब्ध करवायी जाए और समय-समय पर क्षेत्र में सरकारी योजनाओं की जानकारी के साथ-साथ आवश्यक स्वास्थ्य जाँच की कटिबद्धता को भी विकसित करने की आवश्यकता है तभी जनजातीय स्वास्थ्य में सुधार की संभावनाओं को बल मिल सकता है ।

- स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता कार्यक्रमों का आयोजन भी जनजाति स्वास्थ्य के विकास का आधारभूत पक्ष है । इसके माध्यम से जनजाति समुदाय में आधुनिक चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता और अंधविश्वास से मुक्ति की सीख दी जा सकती है । जागरूकता के सकारात्मक परिणामों से ही जनजाति स्वास्थ्य की दशा को बेहतर बनाया जा सकता है ।

2. वर्तमान ग्रामीण सामाजिक संरचना में सामाजिक आर्थिक विकास

*** शशिकांत अवस्थी**

पृष्ठभूमी -

जीवन की गुणवत्ता के लिए सामाजिक एवं आर्थिक विकास दोनों ही महत्वपूर्ण है । यह शोध वर्तमान में सामाजिक स्थिति के साथ भविष्य की नवीन योजना और मिशन को ध्यान में रख कर किया गया है । सामाजिक परिवर्तन किसी भी समाज की सर्वभौमिक विशेषता होती है । साथ ही जरुरत यह कि परिवर्तित स्थिति का मूल्यांकन करके भविष्य में एक लक्ष्य को तय करके, समाज को एक नई दिशा प्रदान की जाये । ग्रामीण समाज विकास को प्राप्त करने के लिए सरकार द्वारा विभिन्न प्रकार की योजनाओं का क्रियान्वयन किया गया है फिर भी सन्तुष्ट जनक परिणाम प्राप्त नहीं हो रहे है । कि हम बेरोजगारी, शिक्षा, स्वास्थ्य सेवाओं को विकास को परिधि से बाहर निकाल कर योजनाओं के केंद्र में रखने की आवश्यकता है, जिस कारण से मानव विकास सूचकांक में भारत की स्थिति बेहतर हो सकें । साथ ही देश के महानगरों पर बढ रहे प्रव्रजन के द्वारा जनसंख्या दबाब को भी कम करने में हमें सहायता मिलेगी । इस शोध पत्र में परिवर्तित हो रही सामाजिक संस्थाओं का पुनः मूल्यांकन कर विकास के साथ जोडने का प्रयास किया गया है । इस शोध के ग्रामीण समाज के परिवर्तन एवं विकास की गति को देखने के साथ ही वर्तमान में ग्रामीण समाज को पहचान देने वाली संस्थाएँ जैसे विवाह, परिवार, नातेदारी, ग्रामीण व्यवसाय, ग्रामीण स्वास्थ्य एवं शिक्षा आदि का एक समाजशास्त्रीय मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है । इस अध्ययन में ऐतिहासिक उदविकास के साथ वर्गात्मक शोध प्रसंचना का प्रयोग किया गया है ।

शब्दकुंजी - सामाजिक आर्थिक विकास

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर सामाजिक परिवर्तन का उदविकास के संदर्भ के विश्लेषण ऐतिहासिक उदविकासीय उपागम कहलाता है जिसके अंतर्गत यह माना जाता है कि परिवर्तन एक निश्चित दिशा की ओर कुछ निश्चित अवस्थाओं से गुजरता है जिसमें कि तात्कालिक परिस्थितियों, घटनाओं को समाज की संरचना तथा इसके विभिन्न भागों के बीच प्रकार्यात्मक संबंधों के संदर्भ में विश्लेषण हेतु प्रयोग किया गया है । प्राचीन ग्रामीण संरचना के लेकर उपनिवेशक काल तथा स्वतंत्रता के उपरांत ग्रामीण समाज की

* Research Scholar, Deptt. of Sociology & Social Work, Dr. Harisingh Gour Central University, Sagar (M.P.) E-mail : sawasthi182@gmail.com

और प्रख्यात लेखकों ने रूख किया और गांव की संरचना एवं प्रकार्य को दर्शाने के लिए संपूर्ण अध्ययन पर बल दिया भारत के अनेक ऐसे लेखक हुए जिन्होंने ग्रामीण समाज के परिवर्तन, विकास, कृषि संरचना, जजमानी प्रथा, पडोस एवं नातेदारी के संबंध में अध्ययन किये किन्तु एक दौर के बाद इस प्रकार के अध्ययनों में विराम लग गया। ग्रामीण समाज एक अलम दौर से गुजर रहा है किंतु आज की 1950 के दशक की तस्वीर के साथ ग्रामीण समाज के मूल्यांकन करने में लगे हुये है। आज आवश्यकता यह है कि ग्रामीण समाज के अध्ययन के नवनी मापदंड तय किये जाये।

भारत जैसे विशाल देश में ग्रामीण संरचना एक प्रमुख विषय है क्योंकि हम जानते है कि किसी भी देश के विकास में कार्यशीघ्र जनसंख्या की सबसे अधिक भूमिका होती है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री अर्मत्य सेन ने लंदन स्कूल ऑफ इकॉनामिक्स में अपने व्याख्यान के दौरान की थी। भारत दुनिया का एक मात्र ऐसा देश है जो कि वैश्विक आर्थिक शक्ति बनने की कोशिश कर रहा है बिना स्वास्थ्य एवं शिक्षा वाले व्यक्तियों के साथ। कहने का मतलब यह कि भारत दुनिया का एक महत्वपूर्ण विकासशील देश है किन्तु यह आर्थिक रूप से विकास कर रहा है पर शिक्षा एवं स्वास्थ्य की स्थिति संतोषजनक नहीं है। देश की कुछेक 66.86 प्रतिशत जनसंख्या (2011 के अुनसार) ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है जो कि देश की कार्यशील जनसंख्या में अपना नाममात्र का योगदान देती है। यदि कहा जदाये कि भारत के आर्थिक विकास में मात्र 31 प्रतिशत शहरी जनसंख्या ही कार्यात्मक रूप से अपना योगदान देती है और यह विकास मात्र शहरी क्षेत्र तक ही सीमित हैं तो कोई गलत नहीं होगा। एक ओर हमारा देश लगातार आर्थिक वृद्धि के दौर से जुड़ा हुआ है और दुनिया के अर्थशास्त्र का एक अनुमान है कि भारत 2030 तक विश्व की सबसे उभरती हुई अर्थ व्यवस्था बनकर सामने आयेगा यही नहीं यह जापान को पीछे कर दुनिया की तीसरी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था के रूप में विश्व पटल पर होगा। यह भारतीय समाज के विकास के गति का एक मापदण्ड हो सकता है। तत्कालीन केंद्र सरकार आजादी के 75 वर्ष पूरे होने पर 2022 में भारत को एक न्यू इंडिया बनाने के स्वप्न से जोड़कर देख रही हैं। जिसका कुछ दृश्य 2017-18 के बजट में दिखाई देता है। मैं भारत की इस प्रकार की प्रगति पर बढ़ने पर सराहना करता हूँ कितु दूसरी ओर भारतीय ग्रामीण संरचना एक संक्रमणकालीन अवस्था से गुजर रही है। उसके विकास एवं परिवर्तन में ध्यान में रखकर मापदण्डों को तय करने की आवश्कता है इस शोध पत्र में ग्रामीण संरचना में हो रहे परिवर्तन में एवं तत्कालिक परिस्थिति में निपटने के विकल्पों को खोज करने का प्रयास किया गया है। यह शोध पत्र प्राथमिक एवं द्वितीय शोध तथ्यों पर आधारित है जिसके

ऐतिहासिक शोध संरचना के साथ ही वर्णनात्मक संरचना के लेकर शोध कार्य किया गया है ।

औपनिवेशिक काल के पूर्ण की स्थिति -

गाँव भारतीय समाज की आत्मा है । महात्मा गांधी जी का यह वक्तव्य अपने आप में ग्रामीण समाज के महत्व का परिचायक है । साथ ही वैदिक काल से ही देश के स्वर्णीम युग के निर्माण में भारतीय ग्रामीण समाज अपना योगदान ते आया है । व्यक्ति की आरम्भिक जो विकास की प्रथम अवस्था थी वह जंगलों से गांव के रूप में विकसित हुई थी । युग बदलाव के साथ ही ग्रामीण संरचना में परिवर्तन आया किंतु परिवर्तन का यह चक्र तीव्र नहीं था नगरों एवं ग्रामों की संरचना आर्थिक अंतर इतना अधिक नहीं था साथ ही नगरों की संख्या भी कम थी ।

औपनिवेशक काल

यह विकास का काल कहा जा सकता है । क्योंकि इसी समय औद्योगिक क्रान्ति की शुरुआत हुई थी । साथ ही यह समाज के पुर्नःजागरण काल का समय था जिसमें समाज में व्याप्त कुरीतियों के विरोध स्वरूप कई सामाजिक आंदोलन चलाये गये । किन्तु ग्रामीण समाज को लेकर अंग्रेजी सरकार के पास कोई योजना नहीं थी । अंग्रेजी सरकार द्वारा उन्हीं योजनाओं को अपनी विकास नीति में शामिल किया गया जिनका की सीधा सम्बन्ध उनके व्यापार एवं शासन करने के लिए आवश्यक था ।

स्वतंत्रता के पश्चात -

यह काल भारत की आजादी से आरंभ होता है जिसमें व्यक्ति लोकतंत्र एवं अपने मताधिकार के द्वारा सरकार का चुनाव करता है । किसी भी सरकार ने समाज कल्याण के अपने कर्तव्य के साथ संविधान से जुड़कर संकल्प के साथ विकास के मार्ग को भारत के सभी नागरिकों के लिऐ समानता के अधिकार के साथ कानूनी रूप सामान्य विकास प्राप्त करने का अधिकार है । सामूहिक विकास कार्यक्रम के द्वारा भारत सरकार ने 1952 में ग्रामीण विकास की शुरुआत की है, किन्तु अपर्याप्त इन्फ्रास्ट्रक्चर (भौतिक संरचना) के कारण सरकार निर्धारित लक्ष्य को प्राप्त करने में असमर्थ रही । इसी कारण आजादी के तुरंत बाद भारत सरकार ने उद्योग के विकास पर अधिक बल दिया । इसका मुख्य कारण यह था कि देश गरीबी भुखमरी जैसी खतरनाक समस्यों से गुजर रहा था । अतः उस समय सरकार का प्रमुख लक्ष्य सभी नागरिकों को भोजन उपलब्ध करना था । साथ ही इन उद्योगों का विकास नगरीय क्षेत्र होने के कारण जनसंख्या में तीव्र वृद्धि होने लगी, कृषि के विकास

में तेजी लाने के लिए 1967 में हरितक्रांति को अपनाया गया। हरितक्रान्ति ने कृषि विकास में एक नया अध्याय जोडा और गेंहू और धान की फसलों की नयी किस्मों से पैदावार में तीव्र वृद्धि दर्ज की गयी, शायद इसी का परिणाम है कि भारत अनाज उपलब्धता में धीरे धीरे आत्म निर्भर बनता गया। किन्तु यह वह समय भी था जब ग्रामीण एवं नगरीय समाज के मध्य विकाय के अन्तर की खाई लगातार बढ़ती ही गयी और ग्रामीण जनसंख्या का लगातार नगरों की ओर रोजगार की तलाश में प्रव्रजन चलता रहा है, परिणाम स्वरूप नगरों में जनसंख्या घनत्व तेजी से बढ़ता चला गया एवं नगरों में नये प्रकार की समस्यायें आने लगी और सरकार का ध्यान ग्रामीण विकास या समस्या से हटता चला गया।

ग्रामीण विकास का नगरीय समाज के साथ संबंध :

ग्रामीण विकास की सबसे बड़ी परेशानी यह है कि ग्रामीण स्तर पर संसाधनों का उपयोग कर विकास के माध्यम खोजने के स्थान पर पार्टी द्वारा वोट बैंक की राजनीति को अधिक प्राथमिकता दी जाती रही है जिस कारण से विकास के स्थान पर अनुदार दिया गये। इस कारण से ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के अवसरों का विकास शून्य ही रहा है। यही कारण है ग्रामीण भारत की तस्वीर ऐसी है, जिसमें देश के संपूर्ण गांव में आजादी के ७० साल बाद भी पूर्ण विद्युतीकरण तक नहीं हो पया है। ग्रामीण समाज और नगरीय समाज के बीच एक बड़ी खाई बन चुकी है। अब तक की सबसे कमजोरी बात यह रही है कि विकास के स्थानीय स्त्रोत को नहीं खोजा गया जिस कारण से ग्रामीण रोजगार से संबंधि प्रव्रजन तेजी से हुआ और नगरों पर जनसंख्या का भार बढ़ता गया। इसका परिणाम यह रहा कि विश्व के सबसे बडे नगर टोकियों (जापान) तक जनसंख्या घनत्व 4000 प्रति व्यक्ति वर्गकिलो मीटर है तो वहीं दिल्ली का जनघनत्व 11500 व्यक्ति प्रति वर्गकिलो मीटर तक पहुंच गया है। इसी कारण हाल ही में दिल्ली में स्मॉग (दिवाली के बाद फटाकों से उत्पन्न धुंध) फैल गया जो काफी समय तक लोगों के परेशानी का सबक बना रहा है। ग्रामीण विकास में हमें आवश्यकता यह कि हम अन्य विकासशील या विकसित देशों के समान ही ग्रामीण लोगों का जमीनी स्तर पर ही रोजगार के अवसरों को खोजे जिससे ग्रामीण प्रव्रजन का कम किया गया है एवं नगरी जनघनत्व को नियंत्रण कर सकें।

वैश्वीकरण एक ऐसी अवधारणा है जिसने परिवर्तन की प्रक्रिया को इतना तेज कर दिया कि व्यवस्था में असंतुलन पैदा होगा। आजादी से 1991 तक परिवर्तन की गति सामान्य से भी कम थी। भारत सरकार ने भौतिक संरचना के विकास से आर्थिक प्रगति करने की काबयत की जबकि शिक्षा और स्वास्थ्य जैसे मुद्दे सरकार के ध्यान से बाहर रहे। शिक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए सरकार द्वारा 1980 के बाद ही प्रयास किये गये लेकिन

सरकारी शिक्षा एवं स्वास्थ्य का ग्रामीण समाज पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ा जिससे कि व्यक्ति संतुष्ठि प्राप्त कर गाँव में ही निवास कर सकें ।

वैश्वीकरण एवं भारतीय ग्रामीण समाज :

वैश्वीकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें संस्कृति, विचार, तकनीक, व्यक्ति एवं पूंजी का बहाव तेजी से होता है । इस बहाव से भारतीय गाँव भी सीधे तौर पर जुजड गहिये है । तकनीक की बहुता ने भारतीय गांव को राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय दोनों ही संस्कृतियों से जोड़ने के लिए एक सेतु के रूप में कार्य किया गया है । इसी दौर में ग्लोबल विलेज जैसी अवधारणाएँ वैश्विक स्तर पर सामने आयी, १९९० से जिस प्रकार से परिवर्तन का दौर आरंभ हुआ उसने सामाजिक व्यवस्था के अन्दर में एक असंतुलन व्याप्त हो गया है । व्यक्ति एवं समुदाय एवं समाज तीनों ही इस परिवर्तन के बीच में संक्रमण की स्थिति पर आकर खड़े हो गये । यह परिवर्तन ग्रामीण समाज की संरचना में परिवर्तन करने वाली प्रक्रिया है । (दीपांकर गुप्ता) ने अपनी पुस्तक मिस्टेकन मॉडर्निटी में कहा है कि भारतीय समाज में पश्चिम का विशैलीकरण उत्पन्न हो रहा है । लोगों में वैचारिक रूप से बदलाव नहीं आया है लेकिन व्यक्ति भौतिक तत्व का तेजी से नकल करने में लगा है । इसी प्रकार के परिवर्तन को (आर्गवन) ने सांस्कृतिक विलंबना के नाम से सम्बोधित किया है जिसमें अभौतिक संस्कृति की तुलना में भौतिक संस्कृति बढ़ जाती है । अगर इन सिद्धान्तों का समाज पर रख कर समझे तो इस प्रक्रिया ने संयुक्त परिवार की कर संरचना को कमजोर किया है, वैश्वीकरण से समाज में एक नवीन प्रतियोगिता को जन्म दिया । यह प्रतियोगिता सामाजिक विकास के स्थान पर आर्थिक विकास को अधिक महत्व देती है । व्यक्ति विकास की प्रतियोगिता से तेजी से जुड़ता जा रहा है । इस प्रतियोगिता से जुड़ने से साथ व्यक्ति सामाजिक मूल्यों एवं कर्तव्यों के घनत्व में कमी आयी है । व्यक्ति ने पूँजी के विकास एवं रोजगार की जरूरत को महसूस किया जैसा कि हम जानते है कि रोजगार भारतीय ग्रामीण समाज में अनौद्यलता के कारण व्यक्ति ने शहरों की ओर तीव्र गति से पलायन किया । जिस कारण से संयुक्त परिवार का भी एकांकी परिवारों में बदलाव होने लगा, साथ ही प्रतियोगितावादी आर्थिक संस्कृति व्यातिवादी परिवर्तनशील समाज की विचारधारा को तेजी से विकसित करती है जो भी संयुक्त परिवार के विघटन का महत्वपूर्ण कारण बनकर सामने आ रहा है ।

ग्रामीण समाज के व्यवसाय में परिवर्तन एवं नवीन संकट :

भारतीय समाजशास्त्री द्वारा ग्रामीण समाज के पहचान के महत्वपूर्ण तत्व के रूप में ग्रामीण व्यवसाय को रखा जाता है किंतु वर्तमान दौर ग्रामीण समाज का परंपरागत

व्यवसाय कृषि घाटे का सौदा बनता जा रहा, भारतीय किसान हमेशा से ही जमीन से प्रेम करता रहा है, साथ वह जमीन को अचल संपत्ति के रूप में संजो कर अपने बच्चों को हस्तांतरित कर उनके जीवन की सुरक्षा प्रदान करने के साथ ही पीढ़ी दर पीढ़ी इस परम्परा को अपनाता चला आ रहा है । जिस पर अब विराम सा लगता दिखाई दे रहा है । सकल घरेलु उत्पादन में कृषि का हिस्सा आजादी के बाद से ही लगातार कम होता जा रहा है । 1950-51 सकल घरेलु उत्पादन (GDP) में कृषि का हिस्सा 51.9 प्रतिशत था वही केन्द्रीय सांख्यिकी कार्यालय सर्वे के अनुसार 2012-13 में यह हिस्सा घटकर मात्र 13.7 प्रतिशत रहा । सरकार द्वारा कृषि के लिए मात्र कर्जमाफ करने पर ही ज्यादा ध्यान दिया गया क्योंकि यह सीधे तौर पर वोटबैंक की राजनीति से जुड़ा था, जमीनी स्तर पर योजना का क्रियान्वयन नहीं हुआ जिसकी सरकार द्वारा पहल की जानी चाहिए थी । किसानों की आय बढ़ाने में सहायक योजनाओं के क्रियान्वयन से कृषि क्षेत्र में सुधार किया जा सकता है । यदि देखा जाये तो कृषि एक ऐसा व्यवसाय है जो प्राकृतिक कारणों पर निर्भर करता है और किसान लगातार घाटे के व्यापार को अपनाये हुए हैं । देश में अनेक किसान के आंदोलन हुये किन्तु इन आंदोलनों का मात्र राजनैतिक स्वरूप ही स्पष्ट हो तो न विकासवादी, किसान पिता अपने पुत्र को किसान बननाने की मनसा नहीं रखता क्योंकि वह अपनी मेहनत से अनुकूल या तुलनात्मक रूप से लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है । सरकार द्वारा कृषि क्षेत्र योजनाओं का क्रियान्वयन तो किया गया किन्तु परिणाम प्राप्त नहीं हुये न्यू इंडिया प्रोजेक्ट के वर्तमान सरकार लक्ष्य तय कर रही है कि 2022 तक किसानों की आय दुगनी हो जायेगी । कृषि बीमा योजना किसान ऋण योजनाओं के भरोसे सरकार न्यू इंडिया के स्वप्न को क्या प्राप्त करती देखने की बात होगी ।

सामाजिक संस्थाओं में परिवर्तन :

किसी भी समाज की संरचना को समझने के लिए समाज की सामाजिक संस्थाओं की समझ आवश्यक है । भारतीय ग्रामीण समाज में सामाजिक संस्थाओं का अत्यधिक महत्व रहा है । समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र में ग्रामीण समाज की संपूर्ण को लेकर अनेक अध्ययन हुए हैं जिसमें मैसूर कुर्ग का एम.एन. श्रीनिवास, उड़ीसा, एफ.जी.वेली आदि अनेक विद्वानों द्वारा अध्ययन किये गये हैं । ग्रामीण समाज की समाजशास्त्रीय जो तस्वीर वर्तमान में प्रस्तुत की जाती है वह इन्ही अध्ययन की अनुसार से बनी हुई है तब से लेकर समाज में अनेक परिवर्तन के चरण गुजर पाये देश के संपूर्ण विकास में ग्रामीण समाज को छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते है ।

ग्रामीण समाज की पहचान देने वाली प्रमुख सामाजिक संस्थाओं में अनेक परिवर्तन हो चुके है । ग्रामीण समाज में संयुक्त परिवार नातेदारी पडोस, आदि का महत्व कम हो रहा है । व्यक्ति विकास की संभावना संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकांकी परिवारों में खोज रहा है । एक अध्ययन के अनुसार पुरूष संयुक्त परिवार में रहना महिलाओं की अपेक्षा अधिक पसंद करते है किन्तु साथ ही यह भी अध्ययन से निकल कर आया है कि संयुक्त परिवार की अपेक्षा एकांकी परिवार में महिलाओं को स्वतंत्रता एवं अधिकार अधिक प्राप्त होते है । अतः हम जब महिला स्वतंत्रता एवं सशक्तिकरण को लेकर चलते है तो या हमें संयुक्त परिवार की संरचना में महिलाओं की स्थिति तय करने का प्रयास करना होगा कि किस प्रकार से संयुक्त परिवार में अधिक से अधिक महिलाओं को अधिकार मिल पाए या फिर समाज को एकांकी परिवार की ओर बढ़ने देने होगा । वहीं वर्तमान समय में ग्रामीण समाज की प्राथमिक संस्था कहेजाने पडोस की भूमिका में लगातार परिवर्तन हो रहा है, प्रत्येक समाज हमेशा से ही पडोस में महत्व रहा है । किन्तु समय एवं स्वार्थ ने इसके महत्व को कम कर दिया । साथ ही नातेदारी भी संयुक्त परिवार से जुड़ी हुई है । संयुक्त परिवार की संरचना में परिवर्तन आने नातेदारी व्यवस्था तीव्रगति से बदल रही है । नातेदार के स्वरूप के भी परिवर्तन देखने को मिल रहा है ।

भारतीय समाज में नातेदारी व्यवस्था हमेशा से ही व्यक्ति की प्रदत्त अस्मिता के लिए सबसे अधिक महत्व देती रही है । इसी कारण से व्यक्ति समाज द्वारा विवाहित नातेदारी की स्थापना में इस बात का विशेष ध्यान रखा जाता था कि सामाजिक स्थिति को बनाये रखने के लिए बराबर वाले समूह या समाज वैवाहिक संबंधों की स्थापना की जाये । किंतु वर्तमान समय में व्यक्ति अर्जित अस्मिता को अधिक महत्व देता है इसका कारण वर्तमान में अर्जित परिस्थिति का कहता हुआ महत्व है ।

ग्रामीण समाज की नई दिशा :

भारत दुनिया की तेजी से बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था है । इसमें प्रतिव्यक्ति आय स्वतंत्रता से लेकर बढ़ती चली आ रही है । भारत सरकार द्वारा हमेशा से ही विकास पैमाने तय करने में इंफ्रांस्ट्रक्चर (भौतिक) संरचना को अधिक प्राथमिकता दी गयी है । शायद यह तत्कालीन परिस्थितियों की मांग भी रही हो । किंतु वैश्वीकरण के बाद भारत ने अपने आर्थिक विकास को तेजी से बढ़ाया, और उसकी तुलना विश्व की बढ़ती हुयी अर्थव्यवस्था के साथ भारत की तुलना की जाने लगी, हम आर्थिक विकास की तुलना के साथ जब सामाजिक विकास की तुलना करते है तो हम काफी पीछे दिखायी देते है । चीन दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाला देश है किंतु चीन के किसी भी शहर की जनसंख्या या

जनसंख्या घनत्व भारत के महानगरों के समान नहीं है । चीन में रोजगार प्रव्रजन की दर भारत की अपेक्षा बहुत कम है । यही हाल विश्व की अन्य बड़ी अर्थव्यवस्था रखने वाले देशों का जहाँ रोजगार के लिए किया गया प्रव्रजन भारत की तुलना में बहुत कम है । आज भारतीय ग्रामों के विकास के नवीन मापदण्डों को तय करने की आवश्यकता है जिससे की रोजगार के लिए हो रहे प्रव्रजन को कम किया जा सके । रोजगार के बाद ग्रामीण समाज में दो अन्य प्रमुख समस्याओं के लिए नवीन विकास के नवीन मापदंडों को तय करने की आवश्यकता है जिसमें प्रथम मापदण्ड शिक्षा है । भारत सरकार द्वारा 1986 में शिक्षा संबंधित सुधारों के लिए अत्यन्त तीव्र गति से आरंभ हुये साथ ही 2002 शिक्षा को लेकर अनिवार्य रूप से शिक्षा प्राप्त करना कानूनी अधिकार के अन्तर्गत रखा गया है जिसमें की ग्रामीम शिक्षा के प्रतिशत में लगातार सुधार देखने को मिल रहा है । किंतु ग्रामीण शिक्षा की गुणवत्ता की कमी के कारण ग्रामीण समाज में शिक्षा के लिए प्रवचन आज भी लगातार चल रहा है । ग्रमीण समाज में शिक्षा प्राप्ति की चेतना का विकास तो हुआ लेकिन गुणवत्ता स्तर पर उस प्रकार से अपना असर नहीं छोड़ पायी जिसकी शिक्षा व्यवस्था हो अपेक्षा की जाती है । आज आवश्यकता शिक्षा प्रतिशत से वृद्धि के साथ अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा की गुणवत्ता की उच्चस्तर पर ले जाने की है ।

शिक्षा के साथ ही स्वास्थ्य को ग्रामीण विकास के साथ जोड़ कर देखने की आवश्यकता है । NFHS4 की रिसर्च के अनुसार 62.9 प्रतिशत ग्रामीण व्यक्ति स्वास्थ्य सेवाट्टों के लिए निजी डॉक्टर के पास जाते है । भारत सरकार द्वारा पहली बार 1908 स्वास्थ्य सेवा को समस्या क्षमता आंका गया और इसके उत्थान के लिये 1983 में बाद में योजनाओं को क्रियान्वयन आरम्भ हुआ । कभी भी स्वास्थ्य सेवाओं को भारत में केंद्रीय समस्या के रूप में नहीं रखा गया है जबकि व्यक्ति के जीवन में स्वास्थ्य एवं शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है । बिना स्वास्थ्य के कोई भी व्यक्ति अपनी पूर्ण कार्य क्षमता से काम कर सकता न ही वह उचित रिसोर्स के रूप में वह देश की उन्नति में योगदान दे सकता है । वही व्यक्ति के जीवन का दूसरा सबसे महत्वपूर्ण तत्व शिक्षा है । जिसकेअभाव में व्यक्ति विकास की ओर उन्मुख हो सकतका है किन्तु कभी भी उचित या परिवर्तन को स्वीकार करने में पीछे हो जाता है । भारत सरकार द्वारा शिक्षा एवं स्वास्थ्य दोनों ही मुफ्त दिये जाते है फिर ऐसे कौन से कारण है जिससे की व्यक्ति सरकारी शिक्षा एवं स्वास्थ्य की अपेक्षा प्राइवेट शिक्षा एवं स्वास्थ्य को प्राथमिकता देता है । भारत से मिशन 2022 न्यू इंडिया की जरूरत है । शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं को परिधि से हटा कर केंद्र में रखा जाये जिससे की स्वच्छ समाज की स्थापना हो सके । ग्रामीण समाज अपना राष्ट्रीय विकास में सहयोग प्रदान कर सकें ।

अतः स्पष्ट है कि राष्ट्रीय विकास की बुनियाद ग्रामीण विकास के साथ जुड़ी है जब तक भारतीय ग्रामीण का विकास नहीं होगा तब तक देश मानव विकास सुचकांक में विश्व पटल पर आगे नहीं बढ़ सकता । वर्तमान समय में समाज निरंतर परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है किंतु परिवर्तन के साथ विकास को जोडने की सबसे गंभीर चुनौती है । इन्फ्रास्ट्रक्चर में सुधार के साथ ही ग्रामीण समाज के अंदर में व्यक्ति की प्रति व्यक्ति आय को बढ़ाने की आवश्यकता है । साथ ही ग्रामीण समाज में शिक्षा एवं स्वास्थ्य के बेहतर उपलब्ध करने की जरूरत है । इन सबके साथ ही गाँव में रोजगार की उपलब्धता पर विशेष ध्यान देने की जरूरत है । जिससे की ग्रामीण आव्रजन को कम किया जा सके । अर्थात अच्छा जीवन एवं रोजगार के संसाधनों को एक साथ जोडना होगा जिससे उनकी आय के संसाधनों में वृद्धि हो सके । शिक्षा और स्वास्थ्य की समस्याओं का प्राथमिक स्तर पर ही समाधान मिल सकें ।

Reference :

- Adler, J., Capital Movement and Economic Development, Macmillan, Londoan, 1970.
- Appadurai, Arjun, Modernity at large : cultural dimensions of globalization, Minneapolis, Minn., : University of Minnesota Press, 1996.
- Aron, Raymond, Main Currents in Socioligical Thought - Vol - I, Penguin Books, London, 1976.
- Arora, R.C., Integrated Rural Development, S. Chand Ltd., Delhi, 1979.
- Bourdieu, P., Cultural Reproduction and Social Reproduction, Sage Publication, New Delhi, 1973.
- Cassen, R.H., Population Economic Society, Macmillan Co. of India Ltd. 1979.
- Desai, V., Rural Development : Issue and Problems, Himayalaya Publishing, New Dehli, 1988.
- Dumont, L., Homo Hierachicus University of Chicago Press, 1970.
- Durkheim, E., The Rules of Sociological Method, The Free Press, New York, 1938.

- Durkheim, E., Division of Labour in Society, The Free Press, New York, 1956.
- Ghurye, G.S., Caste and Race in India, Popular Book Depot, Bombay, 1948.
- Jain, P.C., Bharat ki Arthik Samsyahn, 1969.
- Lewis, W.A., Theory of Economic Growth, George Allene & Unwin Ltd., London, 1995.
- Kane, P.V., Hisotry of Dharmasaatra, Vol-III, Bhandarkar Oriental Reserach Institute, Poona - 1941.
- Karve, Irawati, Kinship Organisation in India, Munshi Ram Manohar Lal Publishers, Pvt. Ltd., New Delhi, 1990
- Malinowski, B., A Scientific Theory of Culture, Oxford University Press, London. 1960.
- NFHS-4, National Family Health Survey - 4 (206-17), Mumbai Macro and International Institute for Population Sciences - 2017.
- Singh, Y., Culture Change in India : Identity and Globalization, Rawat Publications Jaipur, 2000.
- प्रति व्यक्ति आय, पत्र सूचना कार्यालय भारत सरकार 25 जुलाई अभिगमन तिथि 28 जुलाई 2014
- श्रृंगराजन सी.सीमा और ई.एम. विवीश (2014) डेवलपमेंटस इन दा वर्कफोर्स बिटवीन 2009 एंड 2011-12 एंड इकनामिक एंड पॉलीटिकल विकली, वाल्यूम XLIX (23) A

3. ग्रामीण जीवन में साहित्य और संस्कृति की भूमिका

*** श्याम किशोर वर्मा**

सारांश -

भारत कृषि प्रधान देश है तथा अर्थव्यवस्था कृषि आधारित होकर ग्रामीण जीवन यापन का प्रमुख साधन कृषि है, जिसे तकनीकी साहित्य की आवश्यकता है, जो ग्रामीण जीवन के हित साधना का पर्याय बन सके, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य हित साधना है । ग्रामीण जीवन के विकास के लिए खेती का आधुनिक तथा वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार-प्रसार की भी नितांत आवश्यकता है । आज भी ग्रामीण जीवन में पुरातन साहित्य एवं परंपरागत देशज ज्ञान प्रमुख आधार है, जो कि प्रासंगिक भी है । इसके अनुसार साहित्य संस्कृति और सभ्यता का सहसबंध तथा ग्रामीण जीवन के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है । जीवन में साहित्य हित साधना का माध्यम है तथा संस्कृति समाज की पोषक है और सभ्यता जीवन की वाहक है एवं सहिष्णुता जीवन में औषधी का काम करती है । वास्तव में साहित्य समाज का दर्पण है । ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम ही साहित्य है । उसमें मानव हित साधन की मधुर भावना है । साहित्य भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है उसमें मानव जीवन का चित्रण होता है । सभ्यता मानव जीवन का बाह्य स्वरूप है तो संस्कृति उसकी आत्मा । एक-दूसरे के बिना दोनों का कोई अस्तित्व नहीं है । ग्रामीण जीवन की भावात्मक एकता को बनाए रखने की विधियों तथा ग्रामीण साहित्य की विधाओं पर अध्ययन करना आज की आवश्यकता है ।

प्रस्तावना :

भारत गाँवों का देश है और भारत की आत्मा गाँवों में बसती है । भारत कृषि प्रधान देश है तथा अर्थव्यवस्था कृषि आधारित होकर ग्रामीण जीवन यापन का प्रमुख साधन कृषि है । देश की सफल घरेलू उत्पादन में कृषि तथा कृषि से सम्बन्धित सहायक उद्योगों का प्रमुख योगदान रहा है । देश की लगभग ७० प्रतिशत आबादी गाँवों में निवास करती है और पूर्णतः कुशल नहीं होने के कारण परंपरागत देशज ज्ञान पर निर्भर हैं । जिसे तकनीकी साहित्य की आवश्यकता है, जोकि ग्रामीण जीवन के लिए हित साधन का पर्याय बन सके, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य हीत साधन है । ग्रामीण जीवन के विकल्प के लिए खेती का आधुनिक वैज्ञानिक साहित्य के प्रचार-प्रसार की भी नितांत आवश्यकता है । इस

* भा.कृ. अनु. प. - भा. सोय. अनु. सं. इंदौर - ई-मेल : nrcshyam@gmail.com

कार्य के लिए परियोजनाओं को ग्रामीण क्षेत्र में संचालित करना होगा । ग्रामीण जीवन में पुरातन साहित्य प्राचीन ऋषि मुनियों एवं महर्षियों द्वारा प्रसारित किया जाता रहा है, जोकि आज भी प्रासंगिक है । इस साहित्य के रचियता और प्रचारकों में घाघ, भड्डरी, बराह, मिहिर, भृतहरी, महर्षि पाराशर, सुरापाला, महर्षि कश्यप तथा परशुराम, तुलसीदास एवं पतांजली, कात्यायन तथा अन्य महान महर्षियों द्वारा ग्रामीण जीवन के लिए साहित्य सृजन किया तथा ज्योतिषशास्त्र भी । इस साहित्य का प्रमुख प्रासंगिक ज्ञान है जोकि, आज भी ग्रामीण जीवन में रचा-बसा है और जीवन की सफलता प्राप्त करने का प्रमुख आयाम है । ग्रामीण जीवन में अलिखित सम्प्रेषण का माध्यम, हाट, बाजार, मेले, उत्सव तथा सामाजिक कार्यक्रम आज भी प्रमुख साधन है जो कि ग्रामीण जीवन में हित साधन का स्त्रोत है । अतः साहित्य का उद्देश्य ही हित साधन है । अतः इसीलिए ग्रामीण जीवन में साहित्य का महत्वपूर्ण योगदान है । इस आधार पर साहित्य, संस्कृति और सभ्यता का सहसंबंध और ग्रामीण जीवन के विषय में अध्ययन करना आवश्यक है । क्योंकि जीवन में साहित्य हित साधना का माध्यम है तथा संस्कृति समाज की पोषक है और सभ्यता वाहक है एवं सहिष्णुता जीवन में औषधि का काम करती है ।

साहित्य समाज का दर्पण है । ज्ञान राशि के संचित कोष का नाम साहित्य है । साहित्य के माध्यम से रचनाकार अपने विचारों, मनोभावों को व्यक्त करता है । साहित्य का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है । शब्दार्थों सहितों साहित्य'' इसके अनुसार विश्व का समस्त ज्ञान साहित्य है । अर्थात साहित्य एक ऐसा विशाल वृक्ष है, जिसकी शाखाएँ, विज्ञान, कला, राजनीति, समाज, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष (दर्शन) इत्यादि सभी हैं । साहित्य मनोवृत्तियों को तृप्त करतका है, उसमें मानव हित साधन की मधुर भावना है । निरंतर साहित्य सेवन करने वाले के पास हित अवश्य पहुँच जाता है, क्योंकि हित साहित्य में सम्मिलित है । नीतिकार भर्तृहरि कहता है -

''काव्य शास्त्र-विनोदेन कालोगच्छति धीमताम् ।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा ।''

अर्थात् बुद्धिमान पुरूष काव्य का अध्ययन इसलिए करते हैं कि काव्य का अध्ययन करने से ही उन्हें हित की प्राप्ती हो जाएगी, क्योंकि काव्य शास्त्र के 'हित' भी है ।

यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मन जैसी भावनाओं में रमण करता है, मनुष्य का आचार भी वैसा ही बन जाता है । सत् साहित्य की सतत सेवा मनुष्य के आचरण निर्माण में अवश्य कारण बन सकती है । टॉलस्टाय, मार्क्स से भी अधिक शक्ति संपन्न इसलिए

है कि उसने हित सम्पादन करने वाले साहित्य का निर्माण किया, कोरे वाद के आधार पर वर्ग युद्ध की प्रेरणा नहीं दी ।

साहित्य की विशेषता यह भी है कि इसका शासन 'स्वादु' होता है और यह मनोवृत्तियों को 'तोष' देता है । राम नाम के रस की विशेषता की ओर संकेत करते हुए तुलसीदास कहते हैं कि

''स्वादुतोष, सम सुगति सुधा के ।''

सूरदास कहते हैं -

''परम स्वादु सबहीजु निरंतर अमित तोष उपजावें।''

साहित्य पात्र से संबंधन होकर भावुक से सम्बन्ध होता है । साहित्य मनुष्य मनोवृत्तियों को उन्नयन की ओर प्रवृत्त करने वाली वस्तु है ।

महर्षि वेद व्यास का श्रीमद् भागवत और महाभारत यदि साहित्य नहीं है तो और कुछ नहीं है, परन्तु इस साहित्य की प्रवृत्ति मनुष्यों के मन की वृत्ति को सदैव ऊँचा उठाने में सहायक रही है और उसकी यह शक्ति आज भी वैसी ही सजीव है ।

साहित्य शब्द अंग्रेजी शब्द लिटरेचर का पर्यायवाची है । हिन्दी साहित्य शब्द की व्युत्पत्ति ''सहित'' शब्द से हुई है, जिसकी संस्कृत में व्याख्या है - सहितो भावः स साहित्याम् । हित से भरे को साहित्य कहते हैं । अंग्रेजी लिटरेचर दो अर्थों में प्रयुक्त होता है । (१) व्यापक अर्थ में (२) संकुचित अर्थ में । व्यापक अर्थ में इसका अर्थ समस्त वाङ्मय से होता है । इसके अंतर्गत सभी विषयों का साहित्य आता है । प्रत्येक प्रकाशित कृति साहित्य कहलाती है । संकुचित अर्थ में साहित्य का अर्थ रसात्मक साहित्य से होता है । इससे भाषा साहित्य का भी तात्पर्य हो सकता है । इस प्रकार हम हित साधन करने वाली कृति को साहित्य कह सकते हैं । रूढ़ार्थ में साहित्य शब्द का प्रयोग रसात्मक साहित्य के अर्थ में ही होता है, क्योंकि इसमें भावनाओं का प्राधान्य होता है ।

साहित्य मानवीय भावनाओं की अभिव्यक्ति है, आत्माभिव्यक्ति है । साहित्य भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त होता है और उसमें मानव जीवन का चित्रण होता है । साथ ही इसमें सौंदर्य, आनंद तथा कल्याण की भावना निहित होती है । साहित्य हमारे मनोभावों और अंतवर्गों को जागृत करता है । साहित्य की भावना कल्याणमयी होती है । भाषा संस्कृति और परंपराओं की एकता - मनुष्य के एक साथ रहने की भावना ने ही राष्ट्रीयता को जन्म दिया । संस्कृत में लिखा है - ''जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गाधिगरीयसी'' या संस्कृत

की यह भावना कि सर्वेभवंतु सुखिनः सर्वसंत निरामया ने राष्ट्रीयता का प्रसार किया । मनुष्य सामाजिक प्राणी है । वह चिंतनशील भी है । उसने अपनी विकास यात्रा में संस्कृति, सभ्यता रहन-सहन, विज्ञान अविष्कार, धर्म-अर्थ, काम-मोक्ष आदि एवं अपनी कल्पनाशील एवं रचना धर्मिता के आधार पर आज तक की विकास यात्रा की है, उसने संस्कृति का निर्माण किया है । अतः सर्वप्रथम संस्कृति और सभ्यता विचारणीय है ।

संस्कृति - संस्कृति शब्द सम् उपसर्ग के साथ संस्कृति की (डु) और सभ्यता कृ (त्र) धातु से बनता है, जिसका मूल अर्थ साफ या परिष्कृत करना है । आज की हिंदी में यह अंग्रेजी शब्द 'कल्चर' का पर्याय माना जाता है । संस्कृति शब्द का प्रयोग कम से कम दो अर्थो में होता है, एक व्यापक और एक संकीर्ण अर्थ में । व्यापक अर्थ में विज्ञान उक्त शब्द का प्रयोग नर-विज्ञान में किया जाता है । उक्त विज्ञान के अनुसार संस्कृति समस्त सीखे हुए व्यवहार अथवा उस व्यवहार का नाम है जो सामाजिक परम्परा से प्राप्त होता है । इस अर्थ में संस्कृति को सामाजिक प्रथा का पर्याय भी कहा जाता है । संकीर्ण अर्थ में संस्कृति एक वांछनीय वस्तु मानी जाती है और संस्कृत व्यक्ति एक श्लाध्य व्यक्ति समझा जाता है । इस अर्थ में संस्कृति प्रायः उन गुणों का समुदाय समझी जाती है, जो व्यक्तित्व को परिष्कृत एवं समृद्ध बनाते हैं । नर-विज्ञानियों के अनुसार 'संस्कृति' और सभ्यता शब्द पर्यायवाची है । हमारी समझ में संस्कृति और सभ्यता में अंतर किया जाना चाहिए । सभ्यता से तात्पर्य उन अविष्कारों, उत्पादन के साधनों एवं सामाजिक-राजनैतिक संस्थाओं से समझना चाहिए, जिनके द्वारा मनुष्य की जीवन-यात्रा सरल एवं स्वतंत्रता का मार्ग प्रशस्त होता है । इसके विपरीत संस्कृति का अर्थ चिंतन तथा कलात्मक सर्जन की वे क्रियाएँ समझनी चाहिए जो मानव व्यक्तित्व और जीवन के साक्षात् उपयोगी न होते हुए उसे समृद्ध बनाने वाली है । भारत के लम्बे इतिहास में उसकी संस्कृति पर अनेक प्रभाव पड़ते रहें हैं, जिसके फलस्वरूप उसका रूप न्यूनाधिक परिवर्तित होता रहा है । भारत अनेक जातियों, धर्मों तथा संस्कृतियों का संगम स्थल बनता रहा है । यही बात भारतीय शासन व्यवस्था सामाजिक संगठन, दर्शन, साहित्य, कला आदि पर भी लागू है । भारतीय संस्कृति की एक विशेषता है, उसकी समन्वय भावना तथा उसके दर्शनों के इस मंतव्य में प्रतिफलित है कि जीवन लक्ष्य (मोक्ष या निर्वाण) इस व्यवहारिक जीवन और जगत का अतिक्रमण करने वाली स्थिति है ।

सभ्यता मानव जीवन का बाह्य स्वरूप है तो संस्कृति उसकी आत्मा के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं, किंतु एक-दूसरे पर आधारित होते हुए भी दोनों अपना-अपना स्थान रखती है एवं दोनों के अर्थों में बड़ा अंतर है । सभ्यता का सम्बन्ध उन

उपकरणों से है जो मनुष्य अपने इहलौकिक जीवन को सुखी बनाने के लिए जुटाता है । इनका रूप सदैव परिवर्तित होता रहता है, क्योंकि प्रगतिशील मानव अपने बुद्धिबल से नित्य नए अविष्कार करता रहता है और उसका प्रभाव रहन-सहन के साधनों पर गहरा पड़ता है । पाषाण युग से लेकर आज तक अनेक उपकरण जुटाये हैं । यह सब विकास सभ्यता के अंतर्गत आता है । भारत की सभ्यता संसार के अन्य देशों की सभ्यता से अधिक प्राचीन और प्राणवान है । क्रोबर के अनुसार - संस्कृति का आरम्भ तब हुआ, जब भाषा का अस्तित्व था और इसके पश्चात् संस्कृति तथा भाषा दोनों में से किसी को भी समृद्धि का अर्थ दूसरे का विकास होना हुआ ।

ग्रामीण समाज व्यवस्था से आशय - भारत गाँवों का देश है और भारत की आत्मा गाँवों में निवास करती है । ग्रामीण आबादी शहर की ओर पलायन करती जा रही है । पलायन के बावजूद आज भी देश की ६८ प्रतिशत आबादी गाँवों में में निवास करती है । ग्रामीण आबादी के जीवन यापन का साधन खेती और पशुपालन प्रमुख है । तथा खेती से संबंधित अन्य लघु और कुटीर व्यवसाय पर निर्भर आबादी है तथा खेतीहार मजदूर है । इनके हित की बात करना ही ग्रामीण विकास के साथ-साथ देश के निर्माण और विकास की कल्पना की जा सकती है । जिसके लिए नसे संबंधित साहित्य का सृजन कर उसे प्रचारित और प्रसारित करना आज की अनिवार्य है । ग्रामीण समाज और उसके क्रिया-कलापों पर अध्ययन और अनुसंधान की आज आवश्यकता है । जिसे आधार मानकर ग्रामीण विकास का उत्तम साहित्य का निर्माण हो सके । वर्तमान में सरकार ने भी कृषि और ग्रामीण विकास पर ध्यान देना शुरु किया । भारत निर्माण योजना के अंतर्गत ग्रामीण विकास संबंधी योजनाओं का साहित्य वितरित किया जा रहा है । इस योजना से ग्रामीण विकास से महत्वपूर्ण योगदान रहा है । ग्रामीण विकास के लिए कृषि, पशुपालन, बैंकिंग, वित्त व्यवस्था, चिकित्सा-उपचार, कुपोषण, लाड़ली लक्ष्मी योजना, बेटी बचाओ बेटी पढाओ, टीकाकरण, संचार सुविधाओं तथा ग्रामीण विकास से संबंधित सभी कार्यक्रमों का प्रचार-प्रसार एवं साहित्य का वितरण किया जा रहा है जो कि देश के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगे । ग्रामीणजन अधिकतर अशिक्षित गरीब कृषि परिवेश से जुडे संकोची स्वभाव के होते हैं । प्रत्येक कृषक ग्रामीण क्षेत्र में उनकी स्वतंत्रता इकाई होता है । अतः किसी भी कार्य में उनकी उपस्थिति एवं सृजनात्मकता में सहयोगी व्यवहार अपेक्षित है । ग्रामीण जीवन में उपलब्ध भौतिक व प्राकृतिक संसाधनों के बारे में उनका ज्ञान व उसके उपयोग व दृष्टिकोणों के प्रति विचारात्मक एकता भी नहीं देखने को मिलती हैं । अतः ग्रामीणों के जीवन में सक्रीय सहभागिता के लिए उनके हित बद्ध साहित्य का सृजन करना

आवश्यक है । ग्रामीण जीवन पूर्णतः कृषि आधारित होता है । ग्राम के मकान, बनावट, परिवार, जाति, समाज, संस्कृति प्रथाएँ, धर्म, स्वास्थ्य तथा व्यवहार, व्यवहारिक ज्ञान, आदतें, अभिवृत्तियों, ज्ञान व दृष्टीकोण को देखकर साहित्य का निर्माण किया जाना चाहिए । जिसमें घर-परिवार के प्रचलित तरीके, अनाज भण्डारण, पशुओं का रखरखाव, पीने के पानी की व्यवस्था, ग्रामीणों की कलात्मकता व सृजनात्मकता के पक्ष, परिवार की अर्थ व्यवस्था, आय के साधन, बजट की मदें तथा सारी गतिविधियाँ जो कि ग्रामीण जीवन से जुड़ी होती है इन बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक है ।

ग्रामीण जीवन का भावात्मक एकता को बनाए रखने के तरीके -

- सामाजिक आयाम
- आर्थिक आयाम
- सांस्कृतिक एवं धार्मिक आयाम
- राजनैतिक आयाम
- संवेगात्मक आयाम

ग्रामीण साहित्य विधाएँ :

- कहानियाँ
- व्यक्तिगत आलेख
- सचित्र वर्णन
- विशिष्ठ व्यक्तियों का चरित्र चित्रण
- जीवन शैली के अनुभव पुँज
- ग्रामीण गीत, संगीत
- ग्रामीण कविताएँ तथा नृत्य
- पर्यावरण रिति-रिवाज
- भौतिक संसाधन एवं आपदार्थ
- कृषिकार्य आदि

ग्रामीण जीवन साहित्य की भूमिका के क्षेत्र

- ग्रामीण हित और विकास में
- ग्रामीण जीवन यापन और कृषि का क्षेत्र
- ग्रामीण समाज और साहित्य
- ग्रामीण लोक, कला और साहित्य
- ग्रामीण रिति-रिवाज और साहित्य
- कृषि और पशुपालन का साहित्य
- कृषि मुहूर्त और देशज ज्ञान
- कृषि को जीवन यापन का साधन बनाना
- ग्रामीण विकास की साहित्यिक भाषा
- ग्रामीण परंपराओं का साहित्य
- ग्रामीण विकास और धार्मिक साहित्य
- ग्रामीण समाज में देशज चिकित्सा साहित्य
- ग्रामीण विकास का मौखिक साहित्य
- ग्रामीण विकास का संकेत, चेष्टा, वाणी, लिपि साहित्य
- नाटक, कहावतें, पहेलियाँ साहित्य
- दंत कथाओं का साहित्य
- पौराणिक आख्यान अथवा कल्पित कथा साहित्य
- ग्रामीण महिलाओं के विकास का साहित्य
- ग्रामीण विकास और नैतिक शिक्षा
- राजनैतिक परिस्थितियाँ का साहित्य
- भौगोलिक परिस्थितियों का साहित्य
- ग्रामीण विकास की सरकारी योजनाओं का साहित्य
- ग्रामीण विकास पर अनुसंधान का साहित्य
- ग्रामीण स्वच्छता और रोग नियंत्रण साहित्य
- स्वच्छ पेयजल व्यवस्था पर साहित्य

- ग्रामीण विकास और कुपोषण की समस्या निवारण साहित्य
- ग्रामीण स्वास्थ्य और टीकाकरण साहित्य का वितरण
- ग्रामीण पारिवारिक समाज शास्त्र का साहित्य
- ग्रामीण गृह प्रबंध का साहित्य
- ग्रामीण परिवार समाज और किशोर का साहित्य
- ग्रामीण क्षेत्र में परिवार कल्याण अवधारणा का साहित्य
- ग्रामीण क्षेत्रमें परिवार एवं विवाह को प्रभावित करने वाला साहित्य
- ग्रामीण सामाजिक विधान का साहित्य
- ग्रामीण पारिवारिक विघटन एवं एकीकरण का साहित्य
- ग्रामीण सामाजिक मानव शास्त्र का साहित्य
- ग्रामीण संस्कृति का साहित्य
- ग्रामीण सभ्यता का साहित्य
- ग्रामीण अवधारणा का साहित्य
- ग्रामीण उद्विकास, प्रसार एवं नवीनीकरण का साहित्य
- ग्रामीण संवर्धन का साहित्य
- ग्रामीण एकीकरण का साहित्य
- ग्रामीण समाज में स्त्रियों की स्थिति का साहित्य
- ग्रामीण जीवन एवं कल्याण का साहित्य
- ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में सुधार का साहित्य
- ग्रामीण विकास के लिए नवीन तकनीकी साहित्य
- केंद्र और राज्य सरकार की ग्रामीण विकास परियोजनाओं की जानकारी
- ग्रामीण वित्त एवं उद्योग संबंधित साहित्य
- परंपरागत लघु एवं कुटीर व्यवस्था का साहित्य

देश में शहरी आबादी तेजी से बढ़ने के बावजूद भी 68.74 प्रतिशत लोग गाँवों में रहते है । ग्रामीण जीवन कृषि में निहित है । पाँच वर्षों में 3.2 करोड़ से अधिक लोगों ने कृषि छोड़ दी है तथा शहर में पलायन कर दिए हैं, जिन्हें आज तकनीकी साहित्य के ज्ञान से अवगत कर कुशल बनाना होगा और कौशल निर्माण कर, मेक इन इण्डिया के लिए तैयार कर जीवन में खुशहाली लाना होगा, क्योंकि ग्रामीण जीवन को खुशहाल किए बिना राष्ट्रीय समृद्धि मात्र स्वप्न है । ग्रामोत्थान से होगा राष्ट्रोत्थान' आओ चले गावों की ओर'' और साहित्य का प्रसार करें तथा भारत सरकार की पहल 'मेरा गाँव मेरा गौरव'' का सही कार्यान्वयन करना होगा । ग्रामीण जीवन मूल्य एवं आवश्यकताएँ कृषि पर निर्भर है । अतः भारत को विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाने हेतु ग्रामीण जीवन के विकास की अहम भूमिका है ।

निष्कर्ष :

ग्रामीण समाज औरउसके क्रिया-कलापों पर अध्ययन और अनुसंधान की आज आवश्यकता है जिसे आधार मानकर ग्रामीण विकास का उत्तम साहित्य निर्माण हो सके । वर्तमान में सरकार ने कृषि और ग्रामीण विकास पर ध्यान देना शुरु किया है । भारत निर्माण योजना के अंतर्गत ग्रामीण विकास संबंधी योजनाट्टों का साहित्य वितरित किया जा रहा है । इस योजना से ग्रामीण विकास में महत्वपूर्ण योगदान हा थेरहा है । ग्रामीण जीवन में उपलब्ध भौतिक व प्राकृतिकर संसाधनों के बारे में उनका ज्ञान व उसके उपयोग व दृष्टिकोणों के प्रति विचारात्मक एकता भी नहीं देखने को मिलती है । अतः ग्रामीणों के जीवन में सक्रिय सहभागिता के प्रति विचारात्मकता भी देखने को नहीं मिलती है । अतः ग्रामीणों के जीवन में सक्रीय सहभागिता के लिए उनके हित बद्ध साहित्य का सृजन करना आवश्यक है । सारी गतिविधियाँ जो कि ग्रामीण जीवन से जुडी होती है इन बातों का ध्यान रखना भी आवश्यक है । ग्रामीण जीवन कृषि में निहित है । पाँच वर्षों में ३.२ करोड़ से अधिक लोगों ने कृषि छोड़ दी है तथा शहर में पलायन कर दिए हैं, जिन्हें आज तकनीकी साहित्य के ज्ञान से अवगत कर कुशल बनाना होगा, और कौशल निर्माण कर, मेक इन इंडिया के लिए तैयार कर ग्रामीण जीवन में खुशहाली लाना होगा, क्योंकि ग्रामीण जीवन को खुशहाल किए बिना राष्ट्रीय समृद्धि मात्र स्वप्न है । ग्रामीण जीवन में पुरातन परंपरागत देशज ज्ञान और साहित्य प्राचीन ऋषि मुनियों, महर्षियों द्वारा आदिकाल में प्रचारित-प्रसारित किया जो आज भी प्रचलित और प्रासंगिक है, जोकि ग्रामीण जीवन में रचा बसा है तथा मूल्यवान है तता जीवन के यापन के साधनों में इसका उपयोग किया जाता रहा है तथा ग्रामीण जीवन हित साधना का प्रमुख साधन है । देशज ज्ञान पर अनुसंधान कर

नवीन वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को विकसित करना आज की प्रथम प्राथमिकता होना चाहिए । ग्रामीण जीवन की संस्कृति, सभ्यता और साहित्य के सहसंबंध पर अध्ययन करना होगा । वर्तमान में सरकार ने भी ग्रामीण विकास और कृषि पर कई परियोजनाएँ संचालित की है । ग्रामीण जीवन कृषि में निहित है । अतः ग्रामीण जीवन को खुशहाल किए बिना राष्ट्रीय समृद्धि की कल्पना नहीं की जा सकती है ।

5. विधवा स्त्री के परिप्रेक्ष्य में बदलते सामाजिक मूल्य

*** शशिकांत अवस्थी**
प्रो. दिवाकर शर्मा

प्रस्तावना : -

सामाजिक मूल्य समाज में सबसे महत्वपूर्ण हैं । तथा व्यक्ति को जीवन के कल्याण के लिए रास्ता प्रदान करते हैं यहाँ मूल्यों क्रिया एवं निषेध दोनों के नियमों को बताते है । तथा यह बताते हैं कि व्यक्ति को क्या करना है और क्या नहीं । विधवा स्त्री समाज का अंग है अनेक धार्मिक ग्रंथों में विधवा स्त्री के जीवन से संबंधित मूल्य बताये गये हैं जो विधवा को जीवन निर्वाह करने का मार्ग प्रस्तुत करते हैं । भारतीय सामाजिक संरचना के मिथ द्वारा बनी परम्पराएं एवं सामाजिक मूल्य के अनुसार विधवा स्त्री से समाज अपेक्षा करता है कि वो इन्ही परंपराओं तथा मूल्यों के अनसार व्यवहार करे । वर्तमान समय में समाज में नये कारक जुड़ गये है जो धीरे-धीरे सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन ला रहे है । वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण ने संचार, शिक्षा, जागरूकता को बल प्रदान किया है जिससे समाज के मूल्य विधवा स्त्री के प्रति बदल रहे हैं । साथ ही सरकारी योजनाओं ने भी सामाजिक, आर्थिक सुधार केअवसर बनाये गये हैं । निजिकरण से एन.जी.ओ. मजबूत हुए हैं जो विधवा की स्थिति में सुधार एवं विकास करने के लिए अनेक योजनायें चला रहे हैं । मार्क्स (1975, बोटोमोर)सामाजिक परिवर्तन में आर्थिक कारकों को महत्वपूर्ण मनाते हैं । इस अध्ययन में आर्थिक कारक को लेकर विधवा के प्रति सामाजिक मूल्यों में हो रहे परिवर्तन को देखा गया है ।

सामाजिक मूल्य का आधार समाज की संस्कृति होती है । अतः सामाजिक मूल्य सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करते समाज में व्यक्ति की कोई भी क्रिया हो वह समाज के मूल्यों को प्रदर्शित करती है । (मुखर्जी, 1950) । अतः प्रत्येक समाज की संस्कृति अलग-अलग होने से सांस्कृतिक मूल्य भी अलग होते है और सामाजिक मूल्य इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करते है जिससे उनमें भी अंतर दिखाई देता है । व्यक्ति की सामाजिक क्रिया को ध्यान में रखा जाये तो स्पष्ट होता है कि सामाजिक क्रिया, सामाजिक प्रतिक, समय तथा सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करती है (2000, योगेन्द्र सिंह) । जैसे ही इन में

* Shashikant Awasthi (Research Scholar) Dept. of Sociology and Social Work, Dr. Hari Singh gour central university sagar.
** Prof. Diwakar Sharma Dept. of Sociology and Social Work, Dr. Hari Singh gour central university sagar.

परिवर्तन आने लगता है इस परिवर्तन का कारण व्यक्ति का तार्किक चिंतन है जिस में अपनी क्रिया को तार्किक रूप में देखता है औ्र सामीाजिक मूल्यों की तार्किकता को भी देखता है (1896, अगस्त काम्टे) किन्तु समाज के मूल्य समाज की परंपराओं एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर निर्भर करते है जो परिवर्तन को बहुत ही धीरे-धीरे स्वीकार करता है यदि वर्तमान समय में देखा जाये तो मार्क्स (1962, मैकरे) के अनुसार यह पूँजीवादी युग चल रहा है जिसमें आर्थिक मूल्य का प्रभाव अधिक है ।

महिलाओं की सामाजिक स्थिति :

समाज का स्त्री के प्रति दृष्टिकोण और स्थिति अन्योन्याश्रित पर है । समाज अपने द्वारा निर्धारित उसकी भूमिका की दीक्षा का आरम्भ उसे अपने दृष्टिकोण में दीक्षित करता है । इसीलिए स्वभावतः स्त्री समाज के नजरिये को अपना नजरिया बना लेती है । (१९३४, मिड) सामाजिक संरचना में देखा जाये तो महिला का पुरूष के समाज ही महत्व है । संतानों की उत्पत्ति और समाज की निरंतरता के लिए स्त्री की केंद्रीय भूमिका रही है । ऋवैदिक काल को यदि छोड दिया जाये तो हम देखते हैं कि स्त्री को हमेशा ही पुरूष द्वारा दबाया गया है । वैदिक काल में पुरूषों के समान ही अधिकार थे । किन्तु जैसे ही वैदिक से उत्तरवैदिक समाज में आते हैं तो यही से स्त्रियों की स्वच्छंदता बाधित हो जाती थी । उपनयन तथा शिक्षा का अधिकार उससे छीन लिया गया । इसी युग में येतरेए ब्राह्मण खबर देता है कि पुत्र पाने के लिए लोग माँ और बहिन जैसे रक्त संबंधों को कम की बलिवेदी पर चढ़ा देता था ।

मध्यकाल में स्त्रियों की स्थिति और भी खराब हो गयी तथा उस पर अनेक प्रतिबन्ध लगाये गये उसे पर्दा प्रथा, सती प्रथा, बाल विवाह जैसे अनेक बंधनों में रखा गया साथ ही उसे शिक्षा से दूर रखा गया । देखते ही देखते यह प्रथाएँ जीवन शैली बन गयी । उपनिवेशकाल में स्त्री की इस स्थिति में सुधार के लिए अनेक प्रयास किये गये । और समाज के परंपरागत ऐसे नियम जो महिलाओं के लिए घातक थे उस पर अंग्रेजी सरकार कानून बनाये गये किन्तु शिक्षा के अभाव में जागरूकता की कमी एवं कठोर सामाजिक मूल्यों के कारण ये नियम ज्यादा सफल नहीं हुए । स्वतंत्रता के बाद सरकार ने सुधारात्मक कानूनों का निर्माण किया जिससे महिलाओं की स्थिति में सुधार किया जा सके । साथ ही संविधान में भी समानता का अधिकार प्रदान किया साथ ही वैश्वीकरण में शिक्षा एवं जागरूकता का प्रसार हुआ जिससे महिलायें अपने अधिकारों को समझ रही है तथा परम्परागत मूल्यों में परिवर्तन आ रहा है ।

विधवा स्त्री

विधवा शब्द ही समाज में नयी तरह की तस्वीर प्रस्तुत करता है । विधवा होना एक प्राकृतिक घटना का भाग है किन्तु उसका दोष समाज उसी स्त्री को देता है जो विधवा हुई है वह जिस समय अपने सबसे प्रिय से दूर होती है और समाज बिना उसका दर्द समझे उसको सजा के रूप में कठोर नियमों को प्रदान करता है जिसका उसे पालन करना होता है । भारतीय हिन्दू समाज में स्त्री का विधवा होना अभिशाप के रूप में देखा जाता है । विधवा होते ही समाज उससे वे सभी सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, पारिवारिक एवं अनुष्ठानिक अधिकारों को छीन लेता है जो उसे इस घटना के पूर्व मिले हुए थे ।

हमारे धार्मिक ग्रंथों में विधवा स्त्री के लिए 'विधवा धर्म' बना दिया गया है । हिन्दू धर्म के सबसे प्राचीन धर्म ग्रन्थ ऋवेद में विधवा शब्द का उल्लेख मिलता है । विधवा धर्म पर ''वौधायान धर्म सूत्र'' में कहा गया है कि विधवा को पति देहावसान के बाद मदु, मास, मदिरा एवं नमक त्याग कर देना चाहिए और भूमि पर शयन करना चाहिए ये सभी खाद्य पदार्थ गर्मी तथा उत्तेजना पैदा करते है । अतः स्त्री की कम शक्ति के लिए इनका परहेज जरुरी है । मनुस्मृति के 5 अध्याय में कहा गया है कि पति मृत्यु के बाद स्त्री चाहे तो केवल पुष्प, कंदा या फिर फल खा कर अपने शरीर को दुबला कर सकती है । अतः विधवा होने पर स्त्री को बाल संवारना, खान-पान, सुगंध लेना, आभुषण पहनना, रंगीन परिधान पहनना छोडना, पीतल कांसे के बर्तन में खाना नहीं खाएँ तथा इश्वर की आराधना में लगी रहे । साथ ही कुश आसन पर शयन करे समाज विधवा स्त्री से इन सभी नियमों के पालन की कामना करता है ।

विधवा स्त्री की समस्याऐं :

विधवा स्त्री के तन पर सफेद साड़ी आते ही समाज के सारे रंग वे रंग हो जाते है वह अपने जीवन में खुशी वाले सपनों को खोजती है या फिर जो समय गुजर गया है उसी को याद करके आगे का जीवन गुजार देती है । किन्तु उनके मन में क्या है यह समाज में रह रहें लोगों या उनके नातेदारों को जानने का वक्त नहीं है । वृदांवन और बनारस में रह रही सैकड़ों विधवायें कई वर्षो से गुमनाम जिन्दगी बीता रही है । (आई.बी.एन. खबर 17 अगस्त 2004) । विधवा स्त्री जो कि समाज में पति की मृत्यु के बाद बनती है समाज उस विधवा स्त्री को एक सामाजिक कलंक के रूप में देखता है तथा कलंक मन कर अनेक प्रकार के सामाजिक प्रतिबंध लगा देता है । विधवा स्त्री के जीवन जीने के लिए समाज द्वारा एक नियमावली बनायी गयी है जिसके अनुसार विधवा स्त्री को अपने जीवन

का पालन करना होता है । विधवा समाज का अंग होते हुए भी समाज की हिन भावना का शिकार होना पड़ता है साथ ही साथ उसे अनेक ऐसे सामाजिक बन्धनों में रहना पडता है जो कि एक प्रकार से उसका शोषण ही है । वह न सामाजिक बन्धनों में रहना पडता है जो कि एक प्रकार से उसका शोषण ही है वह न सामाजिक निर्णय ले सकती है न ही अपने जीवन का ।

सामाजिक मूल्य :

सामाजिक मूल्य समाज की व्यवस्था का आधार होते है । यह समाज की व्यवस्था को ध्यान में रखकर जन सामान्य को निर्देशित करते है । मूल्यों की गहरे से चर्चा करते हुए (1950, राधाकमल मुखर्जी) ने बताया है कि सामाजिक व्यवस्था का आधार होते है वे कहते है की मूल्य समाज द्वारा स्वीकृत ऐसी इच्छाएँ और लक्ष्य है जिनका आन्तरीकरण, अनुकूलन, सीखने या समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा होता है । ये व्यक्तिपरक वरियताओं, मानकों और आकांक्षाओं का रूप धारण कर लेती है । समाज में कुछ मूल्य सामान्य तथा कुछ विशिष्ट होते है । विधवा स्त्री के मूल्य विशिष्ट सामाजिक मूल्यों में आते हैं । राधाकमल मुखजी 1950 कहते है कि सामाजिक मूल्य ही समाज को संघर्ष से बचाते है तथा विकास की दिशा प्रदान करते है । साथ ही मुखर्जी कहते है कि परिस्थितियों में परिवर्तन होने से मूल्यों में बदलाव होता है ।

सामाजिक एवं आर्थिक मूल्य

व्यक्ति के जीवन के लिए सामाजिक नियम बनाये गये हैं । जिसे सामाजिक मूल्य कहा जाता है । समाज प्रत्येक व्यक्ति से यह अपेक्षा रखता है कि वह इन्हीं सामाजिक मूल्यों पर रहकर अपनी संपूर्ण क्रियाओं को करे तथा वह उन्हीं मूल्यों में रहकर अपने लक्ष्यों को प्राप्त करे (1950, दुर्खिम एमिल), साथ ही समाज एक ही लक्ष्य की प्राप्ती के लिए समाज के अन्दर ही अन्य रास्ते भी प्रदान करता है लेकिन यह रास्ते सामाजिक महत्व के आधार पर होते है जिसे समाज विशिष्ट तथा सामान्य में बाँटता है (1951, पारसन्स.टी.) वर्तमान समय के सामाजिक नियमों के पालन में कमी आयी है (2006, योगेन्द्र सिंह) समाज में पूँजीवदी अर्थव्यवस्था का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है । तथा पूँजी के द्वारा ही सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होने लगी है तथा पूँजी के द्वारा व्यक्ति सामाजिक नियमों को अपनी सुविधा के अनुसार बना लेता है । अतः पूँजीवादी युग के आर्थिक मूल्यों का प्रभाव तेजी से बढ़ रहा है तथा वह सामाजिक मूल्यों को प्रभावित कर रहे हैं ।

एस.सी. दुबे तथा योगेन्द्र सिंह के साथ सामाजिक मूल्यों के जोडते हैं । वे मानते हैं कि परंपराएँ परिवर्तनशील होती है (2003, एस.सी. दुबे, 2006 योगेन्द्र सिंह) अपनी पुस्तक परंपरा और परिवर्तन में बताते हैं कि परम्पराओं का जन्म धीरे-दीरे समाज की परिस्थितियों को ध्यान में रखकर बनायी जीती है जब भी किसी कारक का प्रभाव सामाजिक परिस्थितियों पर पडता है तो परम्पराएँ भी इन कारकों के प्रभाव में बदल जाती है । उन्होंने सामाजिक परम्पराओं तथा सामाजिक मूल्यों पर आधुनिकता के प्रभाव की चर्चा करते हुए उसमें हो रहे परिवर्तन को बताया है ।

कार्ल मार्क्स (१८६७, दास कैपिटल) ने सामाजिक परिवर्तन की चर्चा करते हुए परिवर्तन के पीछे आर्थिक कारणों को जिम्मेदार मानते हैं । वह मानते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का अनिवार्य नियम है । प्रत्येक सामाजिक काल में परिवर्तन होता रहा है । वह अपने आर्थिक निर्धारणवाद के सिद्धांत में सामाजिक परिवर्तन को समझाते हुए कहते है कि सामाजिक परिवर्तन, आर्थिक परिवर्तन पर निर्भर करता है । इसी आर्थिक परिवर्तन से ही सामाजिक संरचना में परिवर्तन आता है । संचार मिडिया, बाजार एवं प्रौद्योगिकी विकास का प्रमुख आधार आर्थिक निर्धारणवाद है जो समाज के मूल्यों, प्रतिमानों एवं परम्पराओं में हो रहे परिवर्तन के पीछे सामाजिक कारकों की अपेक्षा आर्थिक को महत्वपूर्ण मानते हैं वह वर्तमान समाज को पूँजीवादी समाज कहते है ।

अध्ययन क्षेत्र :

अध्ययन क्षेत्र के रूप में छतरपूर शहर को लिया गया है जो मध्य प्रदेश के उत्तर में स्थित है । छत्तरपुर शहर धीरे-धीरे आधुनिकता की ओर अग्रसर है । साथ ही यह आधुनिकता अपनी परम्परा को भी साथ लिए है । इसी विशिष्ट विशेषता के आधार पर छत्तरपुर शहर का चयन किया गया है ।

अध्ययन पद्धति :

शोध विधि किसी भी अध्ययन में महत्वपूर्ण स्थान रखती है । १० विधवा महिलाओं का अध्ययन किया गया है । जिनकी आयु ३५ वर्षों से अधिक है । शोध प्रविधि में अनुसूचि साक्षात्कार के माध्यम से सूचना दाताओं से तथ्यों का संकलन किया गया है ।

निर्दशन :

अध्ययन की आवश्यकता को देखते हुये १० विधवा महिलाओं का चयन उद्देश्यपूर्ण निदर्शन के आधार पर किया गया है । यह चयन के समय प्रमुखतः से यह देखा

गया है कि महिलाओं की आर्थिक स्थिति उनकी शिक्षा दोनों ही अच्छी होक्यों कि यह अध्ययन आर्थिक परिवर्तन के माध्यम से ही विधवा महिलाओं की सामाजिक स्थिति देखने का प्रयास करता है ।

तथ्य संकलन एवं विश्लेषण :

इस अध्ययन में महत्वपूर्ण रूप से इस उद्देश्य को लेकर अध्ययन किया गया है कि विधवा महिला की खराब स्थिति में आर्थिक मूल्य किस प्रकार महत्वपूर्ण है । साथ ही हमें विधवा महिलाओं के प्रति समाज का बदलता परिप्रेक्ष्य दिखायी देता है तो वह कौन सी विधवा महिलाएँ है जिनके प्रति समाज का परिप्रेक्ष्य बदल रहा है ।

तालिका क्र. 01 उत्तरदाताओं के शिक्षा का स्तर

शिक्षा	स्नातक	स्नातकोत्तर	शोध-उपाधि
संख्या	2	7	1

प्रस्तुत सारणी में स्पष्ट है कि विधवा महिलाएँ जो उत्तरदाता के रूप में चयनित कि गयी हैं उनकी शिक्षा उच्च है जिसमें से दो महिलाएँ स्नातक उत्तीर्ण है एवं सात महिलाएँ स्नातकोत्तर तथा एक महिला ने डॉक्टरेट की उपाधि हासिल की है जिससे स्पष्ट है कि विधवा महिलाएँ जो निदर्श के रूप में चयनित की गई है उनका बौद्धिक स्तर अच्छा है ।

तालिका क्र. 02 उत्तरदाताओं के व्यवसाय का विवरण

व्यवसाय	सरकारी नौकरी	गैर सरकारी
संख्या	2	2

प्रस्तुत सारणी में स्पष्ट है कि विधवा महिलाएँ जो उत्तरदाता के रूप में चयनित की गयी है उनके व्यवसाय से संबंधित स्पष्टीकरण दिया गया है जिसमें ५ महिलायें सरकारी सेवा में कार्यरत है । जो बैंक, महिला बाल विकासकेन्द्र और स्वास्थ्य विभाग में नौकरी कर रही है । गैर सरकारी नौकरी में पाँच महिलाएँ है जिसमें से चार महिलाएँ एन.जी.ओ. का संचालन कर रही है तथा एक निदर्श की गई उत्तरदाता महाविद्यालय का संचालन कर रही है ।

तालिका क्र. 03 उत्तरदाताओं की आय का विवरण

आय (मासिक)	30-35 हजार	50-80 हजार	एक लाख से अधिक
संख्या	4	4	2

प्रस्तुत सारणी में स्पष्ट किया गया है कि 10 उत्तरदाताओं में से तीस से पचास हजार के मासिक आय वाले चार तथा पचास से अस्सी हजार मासिक आय वाले चार तथा एक लाख से अधिक वाले दो उत्तरदाता है ।

अध्ययन में 10 महिलाओं का अध्ययन किया गया है । जिसका चयन उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया गया है । इन सभी विधवा महिलाओं की आर्थिक स्थिति उच्च है साथ ही सभी 10 महिला स्नातक एवं स्नानकोत्तर उत्तीर्ण है । अध्ययन के समय महिलाओं से समाज द्वारा उनके प्रति व्यवहार से सम्बन्धित प्रश्न किये गये साथ ही उनका समाज के प्रति क्या दृष्टिकोण है एवं विधवा धर्म को पालन करने में समाज का दबाव आदि से सम्बन्धि प्रश्नों को अनुसूची साक्षात्कार में शामिल किया गया है । सभी १० विधवा महिलाओं में से ये ५ सरकारी नौकरी में थी तथा ४ एन.जी.ओ. का संचालन कर रही थी वही एक महिला महाविद्यालय की संचालक थी । गैर सरकारी नौकरी वाली महिलायें राजनीति में सक्रिय थी । अतः सभी महिलायें लाभ के पद पर थी तथा आर्थिक स्थिति मजबूत थी । महिलाओं की मासिक आय की जानकारी प्राप्त की गयी जो तालिका क्र. ३ में वर्णित किया गया है ।

विधवा महिलाओं से विधवा धर्म के पालन से सम्बन्धित प्रश्न के उत्तर में महिलाओं को विधवा धर्म की पूर्ण जानकारी थी परन्तु मात्र ऐसी २ ही महिलाएँ थी जिन्होंने अपने पति की मृत्यु के बाद कुछ समय तक पूर्ण रूप में विधवा धर्म का पालन किया किन्तु पति की मृत्यु के पश्चात नौकरी मिलने पर वह विधवा धर्म का पालन नहीं कर पायी साथ ही उन्होंने माना की उन्हें किसी भी प्रकार का दबाव नहीं डालागया कि वे इस विधवा धर्म में रहकर ही नौकरी को वह पूर्ण रूप से स्वतंत्र है । १० विधवा महिला उत्तरदाताओं ने अपनी पुत्री का स्वयं कन्यादान किया तथा उन्होंने माना की उन्हें विधवा होने पर किसी प्रकार के निषेधों के लिए समाज या परिवार का दबाव नहीं रहा । पुनः विवाह से सम्बन्धित प्रश्न पर सभी उत्तरदाताओं ने माना की पुनः विवाह का विचार उन के मन में नही आया तथा बच्चों के पालन-पोषण एवं व्यवसाय एवं नौकरी में रह कर ही जीवन व्यतीत हो रहा है इसी बात से वह सन्तुष्ट थी ।

निष्कर्ष :

विधवा स्त्री के समाज में विधवा धर्म बनाया गया है जिसके अनुसार ही विधवा स्त्री को आचरण करना अनिवार्य होता है । समाज मूल्यों की कठोरता में निश्चित रूप से परिवर्तन आया है तथा इस कठोर नियमों में समाज में कुछ शिथिलता व नरमता आयी है । किन्तु काशी, वृन्दावन की विधवा स्त्रियों को देखे तो स्पष्ट रूप से विधवा स्त्रियों के प्रति समाज के कठोर नियम तथा दयाहीनता दिखायी देती है । विधवा स्त्रियों के अध्ययन के दौरान देखा गया कि उनकी आय अच्छी होने से उनके प्रति समाज का दृष्टिकोण अन्य विधवा स्त्रियों की तुलना में भिन्न है । आर्थिक रूप से सम्पन्न विधवाएँ समाज की मुख्य धारा से जुडी हुयी है । समाज के द्वारा बनाये गये विधवा धर्म के सम्पूर्ण नियम यहाँ आर्थिक सम्पन्नता के सामने कमजोर पड जाते हैं तथा आर्थिक सम्पन्न महिलायें समाज केसभी धार्मिक तथा सामाजिक अवसरों में शामिल होती है । अतः आर्थिक मूल्यों के प्रभाव से सामाजिक कमजोर होते प्रतीत होते हैं । अध्ययन से स्पष्ट होता है कि विधवा महिलाओं के प्रति सामाजिक मूल्य बदल रहे हैं तथा विधवाओं की स्थिति में धीरे-धीरे सुधार आ रहा है किन्तु वह स्तर तक अभी नहीं पहुँच सकी की उनमें भेद न किया जा सके । इस भेद का आधार सामाजिक की तुलना में आर्थिक अधिक है क्यों कि आर्थिक सम्पन्न तथा शिक्षित विधवा स्त्री गरीब तथाअशिक्षित विधवा स्त्री की तुलना में सामाजिक भेद का शिकार नही है । अतः विधवाओं की स्थिति में सुधार के लिए पुनःविवाह एक महत्वपूर्ण आवश्यकता है लेकिन इस अध्ययन से यह स्पष्ट हो रहा है कि यदि साथ ही विधवा स्त्री को शिक्षित, आत्मनिर्भर बनाया जाये तो उसकी सामाजिक स्थिति में सुधार होगा तथा सामाजिक भेद में कमी आयेगी ।

References :

- Botomore, T.B (`975) Marxist Sociology mackmilan London.
- Comte, August (1896) The positive philosophy, London
- Chanda, Vipin (2009) Bharat ka Itihas, NCERT
- Durkheim, E. (1961) The Elimentary Forms of Religious Life, collier books.
- Durkheim, E. (1950) The Rules of Sociological Method, the free press gelenko.
- Dubey, Shayamacharan (2003) Prampara aur parivartan, Bhartiya gyanpeeth.

- Marx, Karl, (1867) Das Kapital, verlag vonotto meisner.
- Mead, G.H. (1934) Mind, Self & Society from the stand point of a social behaviouralist, university of Chicago.
- Mekre, H.G. (1962) karl marx The Founding Fathers of Social Sciences, Penguine books hemondsworth.
- Mukherji, Radhakamal, values of sociology, mackmilan 1950
- Mishr, Shivkumar, Marxvadi Sahitya Chintan, 1970 Madhyapradesh Hindi Granth Akdami.
- Parsons, T. (1951) The Social System, the free press ellenio.
- Pathak, Sudhakar, Manusmarati, geeta press Gorakhpur.
- Singh, yogendra, (2000) Culture Change in India, Rawat Publication.
- Singh, yogendra, (2006), Modernisation of Indian Tradition, Rawat Publication.
- IBN Khabar 17 August, 2004

6. उपभोक्ता संरक्षण - संक्षिप्त जानकारी

*** श्री महेंद्र कुमार मिश्र**

उन्नीस सौ अस्सी तथा नब्बे का दशक बाजारों उन्मुख रहा है । ग्लोबलाइजेशन का विस्तार तेजी से हो रहा था । बाजार के तमाम घटकों में सबसे अहम् घटक उपभोक्ता है । उपभोक्ता में जहाँ एक ओर हर नई चीज के उपभोग की तीव्र आकांक्षा रहती है वहीं दूसरी ओर वह उन चीजों के गुणवत्ता विश्वसनीयता, गारंटी, वारंटी इत्यादि को लेकर भी चिंतित रहा है । उसकी इस चिंता को विश्व जगत् ने भी पहचाना, माना है । अप्रैल 1985 में उपभोक्ता संरक्षण के लिए कुछ दिशा निर्देशों को अपनाते हुए संयुक्त राष्ट्र महा सभा ने एक प्रस्ताव पारित किया था । इस प्रस्ताव के द्वारा महासचिव को सदस्य देशों विशेषकर विकासशील देशों को उपभोक्ताओं के हितों के बेहतर संरक्षण के लिए कारगर उपाय करने की जिम्मेदारी सौंपी गई । इसके तहत सदस्य देशों की उपभोक्ता संरक्षण की नीतियाँ और कानून को अपनाने के लिए उन्हें राजी करना था ।

हर एक उपभोक्ता आज अपने एक-एक पैसे की कीमत चाहता है । वह चाहता है कि उत्पाद या सेवा ऐसी हो जो अपेक्षाओं के अनुकूल हो, उम्मीदों पर खरी उतरे और इस्तेमाल में सहज, सरल व सुरक्षित हो । उपभोक्ता संबंधित उत्पाद की समस्त विशिष्टताओं को भी जानना चाहता है । इन आकांक्षाओं व अपेक्षाओं को ही उपभोक्ता अधिकार का नाम दिया गया । प्रत्येक वर्ष 15 मार्च को विश्व उपभोक्ता दिवस के रूप में मनाया जाता है ।

इस तिथि का अपने आप में एक ऐतिहासिक महत्व है, इसी दिन अमेरिकी संसद काँग्रेस ने 1962 में उपभोक्ता द्रुधिकार विधेयक पारित किया गया था । विधेयक पेश करते हुए अपने भाषण में तत्कालिन अमेरिकी राष्ट्रपति जॉन एफ कैनेडी ने कहा था, 'यदि उपभोक्ता को घटिया सामान दिया जाता है, यदि कीमतें बहुत अधिक हैं, यदि दवाएं असुरक्षित व बेकार हैं, यदि उपभोक्ता सूचना के आधार पर चुनने में असमर्थ है तो उसका डॉलर बर्वाद चला जाता है, उसकी सेहत और सुरक्षा खतरे में पड़ सकती है और राष्ट्रीय हित का भी नुकसान होता है ।

अंतरराष्ट्रीय उपभोक्ता यूनियन संगठन (आईओसीयू) जो अब उपभोक्ता अंतरराष्ट्रीय (सी आई) के नाम से जाना जाता है, ने अमेरिकी विधेयक से जुडे उपभोक्ता अधिकार

* वरिष्ठ हिन्दी अनुवादक, वैकुंठ मेहता राष्ट्रीय सहकारी प्रबंध संस्थान, पुणे - 411 007,
संपर्क : 09881232759

के घोषणापत्र के तत्वों को निम्नलिखित प्रकार के आठ भागों में विभाजित कर दिया है - 1. मूलभूत जरूरतें, 2. सुरक्षा, 3. सूचना, 4. विकल्प पसंद, 5. अभ्यावेदन, 6. निवारण, 7. उपभोक्ता शिक्षण और 8. अच्छा माहौल । सी आई विश्व स्तर पर एक बडा संगठन है, इससे विश्व के 100 से अधिक देशों के 240 से अधिक संगठन जुड़े हुए हैं और उपभोक्ताओं को संरक्षण प्रदान करने की दिशा में कार्य कर रहे है ।

इस घोषणा पत्र का अपने आप में सार्वभौमिक महत्व है क्योंकि यह गरीबों की आकांक्षाओं और उम्मीदों का प्रतीक है । इसी को आधार बनाते हुए संयुक्त राष्ट्र ने अप्रैल 1985 को उपभोक्ता संरक्षण के लिए दुपना दिशा निर्देश संबंधी एक प्रस्ताव पारित किया । भारत इस प्रस्ताव पर एक हस्ताक्षरकर्ता देश होने के नाते अपने दायित्व को पूरा करते हुए देश में उपभोक्ता संरक्षण अधिनियम 1986 पारित किया । संसद ने दिसंबर 1986 में इसे कानून का जामा पहनाया जो 15 अप्रैल 1987 से प्रभाव में आया । इस कानून का मुख्य उद्देश्य देश के उपभोक्ताओं के हितों को बेहतर सुरक्षा प्रदान करा है । इस कानून के तहत् उपभोक्ता विवादों के निवारण के लिए उपभोक्ता परिषदों व अन्य प्राधिकरणों की स्थापना का प्रावधान किया गया है । यह अधिनियम उपभोक्ताओं को हर तरह के अनुचित कार्यव्वहारों, सौदों और शोषण के खिलाफ प्रभावी तरीके से समाधान प्रदान करता है ।ष यह अधिनियम निजी, सार्वजनिक या सहकारी क्षेत्र के सभी सामानों और सेवाओं के लिए लागू होता है बशर्ते की उसे केंद्र संस्कार द्वारा अधिकारिक गजट में विशेष अधिसूचना द्वारा मुक्त न रखा गया हो ।

उपभोक्ता संरक्षण के तहत उपभोग में लाई जाने वाली सभी वस्तुओं का समावेश होता है बशर्ते की उपभोग की गई वस्तुओं से संबंधित सही बिल/बैच नम्बर/उत्पादन की तिथि, उपभोग की अंतिम तिथि इत्यादि संबंधित प्रमाणपत्र/साक्ष्य या लो दुकानदार से माँगते नहीं या उसे संभाल कर रख नहीं पाते जिससे उपभोग के बाद फसल खराब होने की स्थिती में या जानवर की तबीयत और अधिक बिगडने की स्थिति में लाचार व बेसहारा हो जाते हैं जिससे उपभोक्ता कानून के तहत् किसी भी तरह की कार्रवाई कर पाने से बंचित रह जाते हैं । इसलिए किसानों तथा ग्रामीण क्षेत्र के उपभोक्ताओं में विशेष जागरुकता लाने की जरुरत है ।

आज शहरी लोगों में इस कानून के प्रति जितनी जागरूकता बढी है उतनी ग्रामीण जनता में दिखाई नहीं देती । इस कानून के तहत जागरूक उपभोक्ता अपनी समस्याओं को लेकर जिला स्तर, राज्य स्तर पर स्थापित उपभोक्ता अदालतों में जा रहे हैं तथा उन्हें

न्याय मिल रहे है । जब से उपभोक्ता कानून बना है तथा अमल में आया है, व्यापारी तथा उत्पादकों में भी जागरूकता व सजगता आई है । इसके बावजूद भी उपभोक्ता किसी न किसी तरह से ठगा व छला जा रहा है । देश में जिस तरह से शिक्षा का प्रचार-प्रसार हो रहा है । मिडिया व अन्य सूचना माध्यमों से लोगों में जागरूकता लाई जा रही है, आशा है उपभोक्ताओं विशेषकर ग्रामीण उपभोक्ताओं को भी बेहतर सेवाएं मिल सकेंगी ।

7. रासायनिक खादों का उपयोग और सावधानियाँ

*** डॉ. ममता मोहन**

भारत में आधुनिक कृषि उत्पादन हेतु रासायनिक उर्वरकों का विशेष महत्व है । अब बिना खाद एवं पानी के अधिक पैदावर लेना संभव नहीं है । उर्वरक, फसलोत्पादन में पानी के बाद सबसे प्रमुख स्थान पर आते है यह दिनों-दिन महंगे होते जा रहे हैं । हर कृषक चाहता है कि फसल को दिए गए उर्वरक से अधिक से अधिक उत्पादन प्राप्त हो, परंतु यह तभी संभ है जब हमारे कृषकों को उर्वरकों के उपयोग की उचित एवं सही जानकारी हो ।

उर्वरकों की कार्यक्षमता बढ़ाने के लिए उनका सही समय पर तथा उचित तरीके से उपयोग करना चाहिए । उर्वरक रसायनिक पदार्थ होते हैं, इतः उनकी कार्यक्षमता में इनके गुणधर्म के साथ-साथ मिट्टी के प्रकार एवं बोई जाने वाली फसल के प्रकार का भी प्रभाव पड़ता है । पौधे को आमतौर पर नत्रजन, स्फुर एवं पौटाशयुक्त खादों की आवश्यकता प्रमुख रूप से होती है । अतः इन्हीं महत्वपूर्ण तत्वों के बारे में जानकारी दी जा रही है ।

नत्रजन युक्त उर्वरक

पौधों को नत्रजन की आवश्यकता उनकी वृद्धि के साथ-साथ अलग-अलग होती है अर्थात प्रारंभ में जब पौधों की विकास गति कम होती है तब नत्रजन की मात्रा कम लगती है । बाद में पौधे के विकास की दर बढ़ने के कारण नत्रजन की आवश्यकता अधिक होती है । तत्पश्चात विकास दूर कम होने के कारण पुनः नत्रजन की जरुरत कम होने लगती है । दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि नत्रजन युक्त उर्वरक पानी के घुलनशील बात यह है कि नत्रजन युक्त उर्वरक पानी के घुलनशील होते है । इसी कारण मिट्टी में पानी के साथ-साथ नत्रजन का रिसाव होता रहता है । जब नत्रजन पौधे की जड़ों के नीचे चला जाता है तब वह किसी काम का नहीं रहता अर्थात अधिक पानी के रिसाव होने से नत्रजन करा नुकसान होता है । उपरोक्त गुण के कारण नत्रजन की संपूर्ण मात्रा बोनी के पूर्व कभी नहीं देना चाहिए । विशेषकर रेतीली व हल्की मिट्टियों में तो नत्रजन उर्वरक की मात्रा को 3 हिस्सों में पौधे की विभिन्न अवस्थाओं पर देना चाहिए । पौधे के जीवनकाल को देखते हुए भी नत्रजन युक्त खाद की मात्रा को विभिन्न हिस्सों में डालना चाहिए । उदाहरण के लिए चार से पाँच माह में पकने वाली फसलों को 2 से 3 हिस्सों में, 9 से 12 माहों

* सहायक प्राध्यापक (समाजशास्त्र) हवाबाग महिला महाविद्यालय, नर्मदा रोड, जबलपुर (म.प्र.)

में पकने वाली फसलों को 3 से 4 हिस्सों में तथा इससे अधिक समय में पकने वाली फसलों में नत्रजन को ४ से ५ भागों में अलग-अलग कर देना चाहिए ।

स्फुर युक्त उर्वरक

पौधे को स्फुर तत्व की आवश्यकता विशेषकर पौधे के प्रारंभिक काल में अधिक होती है । सामान्यतः पौधे अपनी कुल आवश्यकता का 2/3 भाग स्फुर अपने जीवन के प्रथम 1/3 काल में अवशोषित कर लेते हैं । स्फुर युक्त उर्वरक का स्फुर पोषक तत्व मिट् टी के बारीक कणों के संपर्क में आने पर अधिकांशतः अनुपलब्ध अवस्था में बदल जाता है और फिर धीरे-धीरे पौधे को उपलब्ध होता रहता है । इस क्रिया को स्फुर का स्थिरीकरण फिक्शेसन कहते है । यह क्रिया स्फुर तत्व को निचले तहों में रिसने से रोकती है । स्फुर का स्थिरीकरण चिकनी व भारी मिट्टीयों में कम होता है । इस गुण के कारण स्फुर उर्वरकों की संपूर्ण मात्रा फसल की बुवाई के पहले दे दी जानी चाहिएॅ ।

पोटाशयुक्त उर्वरक

पोटाश तत्व का व्यवहार पौधों में नत्रजन की तरह तथा मिट्टी में स्फुर की तरह होता है । नत्रजन की तरह इसकी भी आवश्यकता पौधों को पूर्ण जीवनकाल तक रहती है तथा स्फुर की तरह इसका भी मिट्टी में स्थिरीकरण होता है । चूंकी पोटाशयुक्त उर्वरकों की पूर्ण मात्रा फसल की बुवाई में पहिले खेत में दे देना चाहिए । इस विधि में फसल को लगने वाली नत्रजन, स्फुर व पोटाशयुक्तउर्वरकों की संपूर्ण बोआी के पहिले खोत में बिखेरकर जुताई करके अच्छी तरह से मिट्टी में मिला दी जाती है । इस विधि से उर्वरकों की अधिक मात्रा का उपयोग कम लागत से हो जाता है । बारानी खेती में इस विधि का प्रमुख रूप से उपयोग होता है । जब खड़ी फसल में नत्रजन युक्त उर्वरकों का प्रयोग किया जाता है तब इसे आप ड्रेसिंग कहते है । ध्यान देने योग्य बात है कि जब टाप ड्रेसिंग किया जाये तब पौधों की पत्तियों पर नमी नहीं रहे । नत्रजन युक्त उर्वरकों के पानी में घुलनशील होने के कारण इन्हें आसानी से शोषित कर लेते हैं । आजकल पोटाशयुक्त उर्वरका का उपयोग भी टाप ड्रेसिंग से किया जाने लगा है ।

स्थान विशेष पर उर्वरकों का उपयोग हिल प्लेसमेंट रो प्लेसमेंट :

यह विधि उस जगह प्रयुक्त होती है जहाँ पौधे से पौधे की दूरी १ मीटर या उससे अधिक होती है जैसे कपास, पपीता, केला इत्यादि अथवा जब पौधे से पौधे की दूरी कम

होती है लेकिन यह कतार में रहते है, जैसे गन्ना, आलू, तम्बाखू आदि तब इस विधि से उर्वरक का प्रयार कतारे के एक तरफ व दोनों ओर करते हैं । नत्रजनयुक्त उर्वरक का उपयोग इन फसलों के टॉप ड्रेसिंग के रूप में करते हैं जिससे उर्वरकों की कार्यक्षमता बढ़ जाती है । पेलेट या गोलियों के रूप में उपयोग करने की विधि धान के उन खेतों में अधिक लाभप्रद है जिनमें पानी बहता रहता है । नत्रजनयुक्त उर्वरक तथा मिट्टी को १:१० के अनुपात में मिलाने के बाद छोटी गोलियाँ बनाकर इनको धान के खेतों के कतारों के बीच 3/4 सेमी की गहराई पर डाल दिया जाता है जिससे उर्वरक के पोषक तत्व बहकर नष्ट होने से बच जाते है ।

भूमि की अधोसतह में उर्वरकों का प्रयोग :

इस विधि में उर्वरकों को देशी हल से पोरा बांधकर या फर्टीलाइझर एवं सीडड्रील द्वारा बीज से 4/5 सेमी नीचे डाला जाता है जिससे पौधों की जड़ें सुगमता से इन्हें ग्रहण कर लेती है । स्फुर एवं पोटाशयुक्त उर्वरकों की कार्यक्षमता इस विधि से बढ़ जाती है क्योंकि पौधे की जड़ों के नजदीक स्फुर एवं पोटाशयुक्त प्रोषक प्राप्त होते हैं । नत्रजन की तुलना में पौधे को स्फुर एवं पोटाश धीरे-धीरे प्राप्त होते है । दलहनी फसलों के बीज के साथ डाइअमोनियम फास्फेट का प्रयोग भी इसी विधि से किया जाता है जिससे लागत खर्च कम हो जाता है अर्थात उर्वरक की प्रति क्रि.ग्रा. क्षमता बढ़ जाती है ।

पर्णीय छिड़काव विधि

इस विधि में उर्वरक के घोल को पौधों की पत्तियों पर स्प्रेयर से छिड़ककर दिया जाता है । पौधे जिन पोषक तत्वों को अपनी सूक्ष्म जड़ों द्वारा जमीन से प्राप्त कर सकते हैं वे सब पोषक तत्वों का शोषण अपनी पत्तियों की ऊपरी सतह से भली प्रकार कर सकते है । नत्रजन उक्त उर्वरक जैसे युरिया के ३ प्रतिशत घोल का छिड़काव गेहूँ एवं धान की फसलों पर बालियाँ निकालते समय करते हैं ।

उर्वरक उपयोग की विधियाँ

- उर्वरक का उपयोग करते समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए जैसे -
- उर्वरकों की प्रकृति
- भूमि प्रकार
- फसल की किस्म एवं उनको लगने वाली विभिन्न पोषक तत्वों की विभिन्न मात्रा

उर्वरकों को देने की 4 विधियाँ हैं ।

- बिखेर कर ब्राडकास्टिंग
- भूमि का अधोसतरह में प्रयोग
- स्थान विशेष लोकसाइज्ड प्लेसमेंट
- पर्णीय छिड़काव विधि स्प्रेइंग